करुणा की कहानियां

[भारतीय इतिहास की छ कारुणिक गाथाए]

ठा० राजबहादुरसिंह

राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली



गाधी स्मारक निधि, राजघाट, नइ दिल्ली-?
के सहयोग से
राजपाल एण्ड स ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
द्वारा प्रकाशित

प्रथम सस्करण मई, १६६७

म-य ग्ह रुपया

मुद्रक हिन्दी प्रिन्टिंग प्रम, क्वीस राड, दिल्ली ६

वक्तव्य

अकबर इलाहाबादी ने उर्दू में कविता लिखी थी—

'बुद्धू मियां भी हजरत-गांधी के साथ हैं।
गो खाके मुश्त हैं मगर आंधी के साथ हैं।।'

इसका अर्थ है कि आम आदमी भी महात्मा गांधी के रास्ते पर चलने को आतुर है, यद्यपि स्वयं उसकी अपनी शक्ति सीमित है परन्तु एक आन्दोलन के वायुमंडल में वह भी बड़े-बड़े त्याग करने की सामर्थ्य पा गया है। यह गांधी की आंधी जो भारत ने देखी और जिससे सारा संसार प्रभावित हुआ, वह थी सामान्य व्यक्ति की त्याग सामर्थ्य को बढ़ानेवाले वातावरण की पावनता। देश की आजादी के लिए सबके मन में तड़पन पैदा हो गई थी, पर गांधीजी ने एक ऐसा रास्ता सुझाया जिसमें हर नागरिक अपना योग-दान दे सके। अहिंसा का जो रास्ता था वह थोड़े नेताओं को पैदा करने की बजाय आम जनता को ऊपर उठाने का रास्ता था, और उससे करोड़ों में चेतना आई और लाखों ने उसमें अपने त्याग का उदाहरण रखा।

पर आई आजादी। गांधी का ऐहिक जीवन समाप्त हुआ। सत्ता और संपत्ति की सनातन होड़ में त्याग की शक्ति पर आधारित जनक्रांति के रास्ते से काफिला दूसरी तरफ मुड़ गया और ऐसा लगा कि गांधी की आंधी थम गई। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक जीवन में जो भी परिवर्तन लाने हैं उनको केवल राज्य-सत्ता के आधार पर लाना सम्भव नहीं—यह भुला दिया गया और लोकशक्ति का जो जागरण गांधी-युग में हुआ था और जो आजादी के बाद आगे बढ़ना था वह न बना। त्याग के स्थान पर सत्ता और लोक के स्थान पर राज्यशक्ति को अधिक जोर देने से जो नतीजे आए हैं वे सामने हैं।

पर क्या जो सांस्कृतिक चेतना के तत्त्व गांधीजी ने प्रतिपादित किए वे भुलाए जा सकते हैं ? भारत में उनपर एक हलका परदा छा गया है, पर संसार में, सभी देशों में, तत्त्ववेत्ता उत्तरोत्तर अनुभव कर रहे हैं कि हिंसा की पराकाष्ठा के इस युग में अहिंसा की शक्ति का विकास ही उसका दमन कर सकेगा और इसके लिए गांधी इस युग में एक दीपस्तम्भ हैं। यह पुस्तक तथा अन्य दो पुस्तकें[1] गांधी विचार के पोषण में गांधी जन्म शताब्दी (१९६९) के उपलक्ष्य में गांधी स्मारक निधि ने तैयार कराई हैं तथा राजपाल एण्ड सन्ज की ओर से प्रकाशित हो रही हैं। हमें पूर्ण आशा है कि जबान में सादी, विचारों में सहजगम्य तथा कट्टरता से परे और मौलिक तथा रोचक रूप में लिखी, विद्वान लेखकों की ये पुस्तकें अपने उद्देश्य में सफल होंगी, और निधि की लोक-जागरण की यह आशा पूरी करेंगी कि—

बूंद-बूंद से गागर भरती, नदी-नदी से सागर।
किरन इकट्ठी हुई कि होता सारा जगत उजागर।।

गांधी स्मारक निधि
राजघाट
नई दिल्ली–१

देवेन्द्रकुमार गुप्त

(देवेन्द्रकुमार गुप्त)
मंत्री

---

१ सौ सवाल एक जवाब प्रभाकर माचवे, मूल्य एक रुपया। भारत एक है सीताचरण दीक्षित, मूल्य एक रुपया।

पुस्तक के सम्बन्ध मे

'करुणा की कहानिया' मे मैंने भारतीय इतिहास की छ करुण कथाए दी हैं जिन्हें पढकर मन मे शुद्ध एव उदात्त भावनाओ का सचार होता है।

आरभ मैंने धार्मिक क्रान्ति के युग से किया है, क्योकि इसी युग से करुणा अपने निविड रूप मे देखने को मिलती है।

मुझे करुणा का प्रभाव महावीर के जीवन पर, विशेष रूप म, दिखाई दिया और उनके बाद बुद्ध, अशोक और गाधी के। इन सबके और भी कितने ही समकालीन करुणा के प्रवाह म बहे हैं जिन्ह इस सग्रह म स्थान दिया गया है। भारतीय जीवन को चमत्कृत और आत्म विभोर करनेवाले ऐसे पात्रों मे महावीर, बुद्ध और गाधी के साथ कुणाल, अशोक और कुण्डलकेशा को भी जोड दिया गया है क्योकि इनकी जीवन-गाथाए उसी करुणोत्पादक तत्व स सश्लिष्ट हैं।

ये कहानिया न्यूनाधिक रूप म परम्परागत और लोकविश्रुत रूप म ही कही गई हैं—कम से कम कथावस्तु की दृष्टि से उनमे कोई भिन्नता नहीं लाई गई—हा, अभिव्यक्ति की शैली और भाषा के रूप मे कथित रूपान्तर दृष्टिगत हो सकता है। जहा तक गाधीजी क करुण जीवन प्रसगो का प्रश्न है, व उनके अपने ही शब्दो म वर्णित हैं, अत लेखक को इसका कोई श्रेय नहीं मिल सकता—हा, ठीक पेश न कर पाने के कारण वह लाछना का पात्र अवश्य हो सकता है।

पाठक, इन कहानियों को पढकर स्वय निर्णय करें।

गाधी स्मारक निधि
१, राजघाट, नई दिल्ली–१

—राजबहादुरसिंह

क्रम

महावीर

महावीर

ढाई हजार वर्ष से भी पहले की बात है, जब सारा देश धर्माचरण के थोथे ढकोसलो मे बधकर समाज और जीवन के वास्तविक सत्य को भूल बैठा था और पशुओ की हिंसा, मिथ्या आचरण तथा स्वार्थ-साधन का बोलबाला हो चला था, वैशाली के एक राजघराने मे ऐसा बालक पैदा हुआ जो अवस्था मे अपने बडे भाई से छोटा होने पर भी ऐसा होनहार, चुलबुला, सजग और विचारलीन दिखाई देने लगा कि उसे देखकर सभी लोग आश्चर्य मे पड गए।

उस बालक ने जब कुछ होश सम्हाला तो देखा कि उस युग का समाज धार्मिक और सामाजिक अज्ञान से घिरा हुआ है। धर्म के नाम पर पशुओ की हत्या और शिक्षाहीन नारी जाति का अपमान उस वीर नवयुवक को अच्छा नही लगा। उसने सबसे पहले स्वयं को उस काल की अस्पष्ट भ्रमात्मक मान्यताओ के मूल तक पहुचाने का प्रयत्न किया और तपस्या और ज्ञान प्राप्ति के द्वारा अपने-आपको इस योग्य बना लिया जिससे वह दृढतापूर्वक अपने विचारो का प्रतिपादन कर सके।

इस बालक का जन्म मगध के क्षत्रियकुण्ड ग्राम मे हुआ था

जो आजकल गया ज़िले मे है । उस स्थान पर आजकल लखवाड नाम का ग्राम बसा हुआ है ।

बालक ज्यो ज्यो बडा होने लगा, उसके एकान्त चिन्तन और जीवन पद्धति को देखकर लोग उसके बारे मे चिन्ता करने लगे ।

किन्तु जब वह बालक से युवक हो गया और अपने विद्या-बल एव जीवन पद्धति से जनप्रिय बनकर राज्य सिंहासन पर बैठने योग्य बना तो उसकी अवस्था २८ वर्ष की हो चुकी थी और तब तक उसके मा बाप इस ससार से विदा ले चुके थे। इस अवस्था म, जब उसकी अवस्था ससार मे प्रवेश करके उसमे लिप्त होने की हो रही थी, उसे जैसे किसीने झझोडकर सोते से जगा दिया ।

लोगो ने उस महावीर से उसकी असाधारण योग्यता को देखते राज्य सिंहासन पर बैठने को कहा, किन्तु उसने सोचा कि वह राज्य के झमेले मे पड गया तो जीवन मे जिस मार्ग का अनु-सरण करना चाहता है वह कठिन हो जाएगा । राज्य शासन द्वारा जनता का हृदय परिवर्तन उसे सम्भव नही प्रतीत हुआ, इसलिए उसने राज्य भार अपने भाई नदीवर्द्धन के कन्धो पर डाल दिया और स्वय घर बार से अलग हो गया । क्षत्रियकुण्ड छोडने के पहले महावीर ने अपने भाई भौजाई की अनुमति से गरीबो को काफी धन राज्य-कोष से बाटा । भाई तथा भाभी से विदा ले वह वन की ओर गया और वहा तपस्या तथा एकान्त चिन्तन द्वारा अपनी आध्यात्मिक शक्ति बढाने म लग गया । मगध छोडने के पश्चात् उसने विश्वमात्र को अपना कुटुम्ब बना लिया।

वैसे तो महावीर को अपने घर और राज्य मे रहते हुए ही तत्कालीन जनता की घोर दुदशा की जानकारी थी—चारो ओर फैली समाज की दुदशा के कारण पशु-पक्षी की ही नहीं, कटु, अप्रिय और असद्व्यवहार के द्वारा मनुष्यो की भी हत्या हो रही थी। अपने आहार के लिए ही नही, धम-साधन और मुक्ति के लिए यज्ञ मे निरीह पशुओ की हत्या, महावीर के लिए ऐसी करुणा का दृश्य सिद्ध हुई कि उन्होंने उसके उमूलन का प्रण कर लिया। तपस्या और चिन्तन से उनके विचारो मे और भी निखार आ गया था और उन्होंने अब और भी स्पष्ट रूप मे देख लिया था कि राज्य-शासन और धम शासन दोनो का ध्येय है जनता को सन्माग पर लाना। किन्तु राज्य-शासन के अधिनायक तो स्वय ही माया-मोह मे ग्रस्त प्राणी होते हैं इसलिए वे समाज-सुधार के काय मे सफल नही हो सकते, क्योकि जो जिस चीज को अपने ही हृदय-तल मे से नही निकाल सकता, वह लाखो-करोडो लोगो के मन से कैसे मिटा सकता है। उन्होंने अनुभव किया कि राज्य-शासन की बुनियाद प्रेम, स्नेह और सद्भाव पर नही, भय, आतक और दमन पर रखी जाती है। यही कारण है कि राज्य-शासन लोकहित की कोई स्थायी व्यवस्था नही कर पाता।

इन विचार के परिणामस्वरूप तपस्यारत युवक महावीर इस निणय पर पहुचे कि मानव-कल्याण की प्राप्ति राज्य शासन द्वारा नही, सुधार और आन्दोलन द्वारा, लोक-हृदय और लोक-मत बदल देने मे हो सकती है और इसके लिए तैयारी करने म उन्हें और भी तपस्या, चिन्तन और लोकसग्रह करना होगा। भले ही उन्हें सारा जीवन उत्सग कर देना पडे, अपने को प्रजा के,

अपने तपस्या-मार्ग मे विचलित नही हुए तो उसने उन्हे प्रलोभन मे डालने का प्रयत्न किया। किन्तु जब वे उसकी लपट म भी नही आए तो सगम ने नई-नई यत्रणाए और माया-मोह के बन्धन प्रस्तुत किए। इस तरह लगातार छ महीने यह क्रम चला, पर महावीर अपने पथ से नही डिगे तो परीक्षक सगम का धैय टूट गया और उसने अपना परिचय देते हुए भगवान महावीर से कहा—"भगवन्, क्षमा करे—मैंने आपको बहुत कष्ट दिया और प्रलोभन भी दिए, पर आप किसीसे विचलित नही हुए। मैंने आपके आराम और चिन्तन म बाधा डाली। परन्तु अब मैं जा रहा हू, अब आपको कोई कष्ट नही होगा।"

सगम की इन बातो स भगवान महावीर की आखें छलछला आई।

सगम ने पूछ लिया—"महाराज, क्या आपको अब भी किसी कष्ट की आशका है?"

"हा सगम, भयकर कष्ट की।"

"किस प्रकार के कष्ट की? मुझे बताइए—मैं उसका निराकरण करूगा।"

"सगम, तुम क्या निराकरण करोगे? क्या वह तुम्हारे बस की बात है?"

"मुझे मालूम तो हो भगवन्! शायद वह भी मेरे बस की हो।"

"सगम, क्या तुम समझते हो कि मैं अपने कष्ट की बात कह रहा हू?"

"तो फिर महाराज?"

"नहीं वत्स, बात ऐसी नहीं है। मैं अपने कष्ट से तो कभी घबराता ही नहीं। मैं तो कष्टों से अधिक मग्न जाता हूं। यह कष्ट तो और तरह का है संगम!"

"मुझे बताइए प्रभु, वह कौन-सा कष्ट है। शायद मैं उसे दूर करने में सहायक हो सकूं।"

"वह यह है संगम, कि तुमने अज्ञान की दशा में मुझे जो कष्ट पहुंचाए हैं, उनका भविष्य में क्या फल होगा? जब मैं तुम्हारे इस अंधकारपूर्ण भविष्य की कल्पना करता हूं तो मैं कांप उठता हूं—मुझे रोमांच हो आता है। एक अबोध आत्मा मेरे कारण कितनी यातना भोगेगी, कितना कष्ट पाएगी, यह सोचकर मुझे घोर कष्ट हो रहा है। जैसे भी हो सके, तुम्हें शान्ति प्राप्त हो, यही मेरी आकांक्षा है।"

भगवान महावीर की करुणा की यह हिलोर देखकर संगम दंग रह गया। उनके नेत्रों में आंसुओं की धारा बह रही थी। इस प्रवाह में संगम की कठोरता और ताव बह गया। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और उसके नेत्रों से भी आंसू बह चले। मित्र शत्रु का भेद वहां समाप्त हो चुका था। जिसे संसार के अन्य लोग शत्रु या विरोधी समझते, वह करुणा का पात्र बनकर उनका शिष्य बन गया।

बुद्ध

कोसल के महाराज शुद्धोदन शाक्यवंश के विचारशील शासक थे। उन्होंने अपनी परम्परा की शिक्षा अपने पुत्र गौतम को देने की पूरी व्यवस्था कर ली थी। नवयुवक गौतम सभी राजोचित विद्याओं में कुशल बन चुके थे। राजसी ठाट-बाट और सिर पर पिता की छत्रच्छाया—सुख-सन्तोष के सभी साधन तैयार रहते थे। विवाह तो हो ही चुका था—एक शिशु ने जन्म लेकर जैसे उनकी परम्परा की जंजीर की कड़ी तैयार कर दी थी। किन्तु यह सब होते हुए भी गौतम का मन सांसारिक सुखों और साधन सुविधाओं में जकड़ता नहीं था—जैसे उनका सुखी जीवन कभी-कभी मन में किसी अभाव का अनुभव करता और कोई बात खटका करती।

महाराज शुद्धोदन ने ऐसे निपुण सेवक नियुक्त कर रखे थे जो राजकुमार की सेवा में सदैव तत्पर रहते। उनका चतुर सारथि उन्हें घुमाने-फिराने और मन-बहलाव के लिए रथ में बाहर ले जाया करता। राजकुमार को प्रकृति की मनोरम छटा—बाग-बगीचे देखने का बड़ा चाव था।

एक दिन की बात है, युवराज गौतम उद्यान की सैर के लिए रथ में बाहर जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने देखा, एक आदमी

कमर व बल थुका बडी कठिनाई से रास्ता चल रहा था। राज कुमार ने सकेत से गाडी रुकवाई और सारथि से पूछा—'सारथि मित्र, यह आदमी इस तरह क्यों चल रहा है ?"

सारथि ने कहा—"महाराजकुमार, यह वृद्ध है।"

महाराजकुमार न फिर पूछा—"भला वृद्ध का क्या मतलब ह सारथि ?"

सारथि ने कहा—"वृद्ध वह है जिसका शरीर उम्र बढ जाने स काम नही देता—इसे अब अधिक दिन नही जीना है।'

महाराजकुमार—तो साथी, क्या एक दिन मेरी भी यही हालत हो जाएगी ?

सारथि—हम सभीकी हालत एक दिन ऐसी हो होने वाली है। शरीर कायम रहा तो बुढापा तो आकर ही रहेगा।

"तो फिर गाडी अन्त पुर को लौटा ले चलो—मुझे उद्यान मे नही जाना है।" राजकुमार ने कहा।

"जो आज्ञा।" कहकर सारथि ने रथ अन्त पुर की ओर मोड लिया।

अन्त पुर म आकर राजकुमार शोकपूर्ण विचार मे डूब गए और सोचने लगे कि इस जीवन का धिक्कार है जिसके कारण वृद्धावस्था आती है और मनुष्य का जीवन ऐसा दु खी हो जाता है कि चलना फिरना तक कठिन हो जाता है।

उधर राजा शुद्धोदन न सारथि को बुलाकर पूछा—"क्या राजकुमार बागीचा देखकर खुश हुए ?"

सारथि ने कहा—"महाराज, खुश क्या होते, हम तो रास्ते से ही लौट आए। एक बुड्ढे की बुरी हालत देखकर राज

कुमार का मन दुःखी हो गया और वे अंतःपुर को लौट आए।"

महाराज शुद्धोदन के आदेश से राजकुमार गौतम का मन लगाने के लिए और भी तरह-तरह के राग-रंग किए गए। खेल-क्रीडा, नृत्य संगीत और सभी तरह के इन्द्रिय-सुख के साधन बढ़ा दिए गए। राजकुमार का मन उन सुखों में मग्न हो गया और वे उनमें ऐसे लीन हुए कि कुछ दिनों तक उन्होंने कहीं बाहर जाने, प्राकृतिक दृश्य देखने आदि का नाम भी नहीं लिया।

कुछ समय बाद जब राजकुमार का मन फिर उद्यान देखने के लिए जाने को हुआ तो सारथि रथ लाया और इस बार दूसरे रास्ते से उस दिशा को ले जाने लगा। कुछ दूर जाने पर राजकुमार ने देखा, रास्ते में कोई रोगी ऐसी गहरी बीमारी में ग्रस्त होकर पड़ा है कि उसे अपने मल-मूत्र में लोटने से लोग मुश्किल से अलग कर रहे हैं, और उसे ठीक से वस्त्र आदि पहना रहे हैं।

उसका यह हाल देखकर राजकुमार ने सारथि से पूछा—"इसे क्या हो गया है? इसकी आंख कैसी हो गई हैं? गले से आवाज क्यों नहीं निकल रही है?"

सारथि ने कहा—"यह रोगी है महाराज।"

महाराजकुमार ने फिर पूछा—"रोगी का क्या मतलब?"

सारथि—रोगी का मतलब यह कि इसका शरीर अपने काबू में नहीं है। यह तन्दुरुस्त आदमियों जैसा व्यवहार नहीं कर सकता।

राजकुमार—तो मेरा मित्र सारथि! यह तो बताओ। क्या मेरा शरीर भी इसी प्रकार बेकार और भार-सा बन सकता है?

"क्यों नहीं महाराजकुमार—सभी मनुष्य रोगग्रस्त हो सकते हैं—ससार में राजा, रक, फकीर सभी व्याधिधर्मी हैं।"

राजकुमार—तो फिर मुझे वाटिका देखने नही चलना है—रथ अन्त पुर की ओर लौटा ले चलो सारथि।

सारथि ने आज्ञा का पालन किया।

राजकुमार शरीर के रोगग्रस्त होने की बात से और भी शोकपूर्ण विचारों म तल्लीन हो गए और अन्त मे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि इस तरह रोगग्रस्त होनेवाले के जन्म और जीवन को धिक्कार है जिससे मनुष्य इतना पीडाग्रस्त हो जाता है।

सारथि से राजा शुद्धोदन को फिर मालूम हुआ कि राजकुमार बीमार की अवस्था देखकर सासारिक जीवन के कष्ट से घबडा गए हैं, तो उन्होने उनका मन ससार मे रमाने के लिए और भी सुखद और सुविधाजनक उपाय कर दिए।

इस प्रकार कुछ काल और बीता और राजकुमार उस बात को भूल-से गए।

कुछ समय के बाद एक दिन राजकुमार को उद्यान देखने की याद फिर आई तो उन्होंने सारथि को बुलाकर रथ तैयार करने को कहा।

इस बार सारथि एक तीसरे ही रास्ते से उद्यान की ओर जाने लगा, पर रथ नगर से अधिक दूर नहीं जा पाया था कि रास्ते मे बहुत-से लोगो की भीड दिखाई दी जो रग-बिरगे वस्त्रो से सजाकर एक पालकी-सी तैयार कर रहे थे। राजकुमार ने यह दृश्य देखा तो सारथि से पूछा—"ये लोग यह क्या चीज तैयार कर रहे हैं सारथि ?"

सारथि ने कहा—"महाराजकुमार, यह एक मृत मनुष्य की अर्थी है।"

"तो फिर मेरा रथ उसके निकट ले चलो।" राजकुमार ने कहा।

सारथि आज्ञानुसार रथ उधर ले गया। मुर्दे को पास से देखकर राजकुमार ने पूछा—"सारथि, मरने का अर्थ क्या होता है?"

सारथि बोला—"मरने का अर्थ यह होता है कि अब यह मनुष्य अपने माता पिता और रिश्ते नातेवालों को दिखाई नहीं देगा। न वही किसीको देख पाएगा।"

राजकुमार—तो क्या मेरी भी यही गति होगी? क्या मैं भी राजा रानी, सगे सम्बन्धियों को नहीं दिखाई दूंगा और मैं उन्हें नहीं देख सकूंगा?

सारथि ने कहा—"नहीं महाराज! यही तो मौत है। यह सभीके लिए एक सी है। अन्त में सभीकी यही गति होनेवाली है।"

"तो फिर अब उद्यान में नहीं चलना है सारथि—रथ अन्तःपुर को वापस ले चलो।"

सारथि ने रथ वापस मोड़ लिया और महाराजकुमार को अन्तःपुर वापस ले गया। महाराजकुमार वहां बड़ी ही शोकपूर्ण अवस्था में देर तक बेचैन पड़े रहे और अन्ततः उन्होंने कहा—"इस जन्म और जीवन को धिक्कार है जिससे मनुष्य बुढ़ापा, व्याधि और मौत को प्राप्त होता है।"

जब राजा शुद्धोदन ने पहले ही की तरह इस बार राज-

"क्यों नहीं महाराजकुमार—सभी मनुष्य रोगग्रस्त हो सकते हैं—ससार मे राजा, रक, फकीर सभी व्याधिधर्मी हैं।"

राजकुमार—तो फिर मुझे वाटिका देखने नही चलना है—रथ अन्त पुर की ओर लौटा ले चलो सारथि।

सारथि ने आज्ञा का पालन किया।

राजकुमार शरीर के रोगग्रस्त होने की बात से और भी शोकपूर्ण विचारो म तल्लीन हो गए और अन्त मे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि इस तरह रोगग्रस्त होनेवाले के जन्म और जीवन को धिक्कार है जिससे मनुष्य इतना पीडाग्रस्त हो जाता है।

सारथि से राजा शुद्धोदन को फिर मालूम हुआ कि राजकुमार बीमार की अवस्था देखकर सासारिक जीवन के कष्ट से घबडा गए हैं, तो उन्होने उनका मन ससार मे रमाने के लिए और भी सुखद और सुविधाजनक उपाय कर दिए।

इस प्रकार कुछ काल और बीता और राजकुमार उस बात को भूल-से गए।

कुछ समय के बाद एक दिन राजकुमार को उद्यान देखने की याद फिर आई तो उन्होने सारथि को बुलाकर रथ तैयार करने को कहा।

इस बार सारथि एक तीसरे ही रास्ते से उद्यान की ओर जाने लगा, पर रथ नगर से अधिक दूर नही जा पाया था कि रास्ते मे बहुत-से लोगो की भीड दिखाई दी जो रग बिरग वस्त्रो से सजाकर एक पालकी-सी तैयार कर रहे थे। राजकुमार ने यह दृश्य देखा तो सारथि से पूछा—"ये लोग यह क्या चीज तैयार कर रहे हैं सारथि?"

सारथि ने कहा—"महाराजकुमार, यह एक मृत मनुष्य की अर्थी है।"

"तो फिर मेरा रथ उसके निकट ले चलो।" राजकुमार ने कहा।

सारथि आज्ञानुसार रथ उधर ले गया। मुर्दे को पास से देखकर राजकुमार ने पूछा—'सारथि, मृत का अर्थ क्या होता है?"

सारथि बोला—"मृत का अर्थ यह होता है कि अब यह मनुष्य अपने माता पिता और रिश्ते नातेवालों को दिखाई नहीं देगा। न वही किसीको देख पाएगा।"

राजकुमार—तो क्या मेरी भी यही गति होगी? क्या मैं भी राजा रानी, सगे सम्बन्धियों को नहीं दिखाई दूंगा और मैं उन्हें नहीं देख सकूंगा?

सारथि ने कहा—"नहीं महाराज! यही तो मौत है। यह सभीके लिए एक सी है। अन्त मे सभीकी यही गति होनेवाली है।"

"तो फिर अब उद्यान मे नही चलना है सारथि—रथ अन्तःपुर को वापस ले चलो।"

सारथि ने रथ वापस मोड लिया और महाराजकुमार को अन्तःपुर वापस ले गया। महाराजकुमार वहां बडी ही शोकपूर्ण अवस्था मे देर तक वचन पड रहे और अन्ततः उन्होने कहा—"इस जन्म और जीवन को धिक्कार है जिससे मनुष्य बुढापा, व्याधि और मौत को प्राप्त होता है।"

जब राजा शुद्धोदन ने पहले ही की तरह इस बार राज-

"क्यो नही महाराजकुमार—सभी मनुष्य रोगग्रस्त हो सकते हैं—ससार म राजा, रक, फकीर सभी व्याधिधर्मी हैं।"

राजकुमार—तो फिर मुझे वाटिका देखने नही चलना है—रथ अन्त पुर की ओर लौटा ले चलो सारथि।

सारथि ने आज्ञा का पालन किया।

राजकुमार शरीर के रोगग्रस्त होने की बात से और भी शोकपूर्ण विचारो म तल्लीन हो गए और अन्त म इस निष्कर्ष पर पहुचे कि इस तरह रोगग्रस्त होनेवाले के जन्म और जीवन को धिक्कार है जिसस मनुष्य इतना पीडाग्रस्त हो जाता है।

सारथि से राजा शुद्धोदन को फिर मालूम हुआ कि राजकुमार बीमार की अवस्था देखकर सासारिक जीवन के कष्ट स घबरा गए हैं, तो उन्होने उनका मन ससार मे रमाने के लिए और भी सुखद और सुविधाजनक उपाय कर दिए।

इस प्रकार कुछ काल और बीता और राजकुमार उस बात को भूल-से गए।

कुछ समय क बाद एक दिन राजकुमार को उद्यान देखन की याद फिर आई तो उन्होने सारथि को बुलाकर रथ तयार करने को कहा।

इस बार सारथि एक तीसरे ही रास्त से उद्यान की ओर जाने लगा, पर रथ नगर से अधिक दूर नही जा पाया था कि रास्ते म बहुत-से लोगो की भीड दिखाई दी जो रग बिरगे वस्त्रों से सजाकर एक पालकी-सी तैयार कर रहे थे। राजकुमार ने यह दृश्य देखा तो सारथि से पूछा—"ये लोग यह क्या चीज तयार कर रहे हैं सारथि?"

सारथि ने कहा—"महाराजकुमार, यह एक मृत मनुष्य की अर्थी है।"

"तो फिर मेरा रथ उसके निकट ले चलो।" राजकुमार ने कहा।

सारथि आज्ञानुसार रथ उधर ले गया। मुर्दे को पास से देखकर राजकुमार ने पूछा—"सारथि, मृत का अर्थ क्या होता है ?"

सारथि बोला—"मृत का अर्थ यह होता है कि अब यह मनुष्य अपने माता पिता और रिश्ते नातेवालों को दिखाई नहीं देगा। न वही किसीको देख पाएगा।"

राजकुमार—तो क्या मेरी भी यही गति होगी ? क्या मैं भी राजा रानी, सगे सम्बन्धियों को नहीं दिखाई दूंगा और मैं उन्हें नहीं देख सकूंगा ?

सारथि ने कहा—"नहीं महाराज ! यही तो मौत है। यह सभीके लिए एक सी है। अन्त में सभीकी यही गति होनेवाली है।"

"तो फिर अब उद्यान में नहीं चलना है सारथि—रथ अन्तःपुर को वापस ले चलो।"

सारथि ने रथ वापस मोड लिया और महाराजकुमार को अन्तःपुर वापस ले गया। महाराजकुमार वहां बडी ही शोकपूर्ण अवस्था में देर तक बेचैन पड़े रहे और अन्ततः उन्होंने कहा—"इस जन्म और जीवन को धिक्कार है जिसमें मनुष्य बुढापा, व्याधि और मौत को प्राप्त होता है।"

अब राजा शुद्धोदन ने पहले ही की तरह इस बार राज-

मातृत्व के बोध से मुक्त और हल्की होकर गहरी नीद मे निमग्न है । इसे आहट नही मिलनी चाहिए, नही तो बनी-बनाई बात बिगड जाएगी । मुझे यहा अधिक देर नही रुकना चाहिए ।

०

वस्त्र बदल लेना चाहिए । परन्तु हैं ! यहा वस्त्रागार म तो सामान्य वस्त्र है ही नही । चलो कही किसी गरीब के फटे-पुराने वस्त्र से बदल लेंगे । परन्तु यह बात तो प्रात सूर्योदय के बाद ही हो सकती है । तब तक इतनी तेजी से चलना चाहिए कि पिताजी सुबह आसपास खोज कराए तो उन्हे कोई पता न चले । अधेरी रात मे पूर्व के राजपथ पर बढते चलना ही ठीक होगा । पीछे पौ फूटने के बाद मुख्य मार्ग छोडकर देहात के उन लोगो मे जा पहुचना होगा जिनकी सेवा से ही ससार के सभी दुखो से त्राण मिल सकता है और जिनकी सेवा की सबसे बडी आवश्यकता है ।

अशोक

अशोक ने लोकपीडा और मर्मान्तक दुख का अनुभव कर दूसरे ही दिन अपने साम्राज्य मे घोषणा कराई—"राज्य मे हिंसा का क्रम बन्द हो—शिकार मे भी पशु पक्षी न मारे जाए—न किसी भी जीवधारी की व्यर्थ हत्या हो। रसोई के लिए भी पशु पक्षी और जलचर पकडे और मारे न जाए।"

इसके शीघ्र बाद ही सम्राट अशोक ने एक और शिलालेख द्वारा सारे राज्य मे घोषणा करा दी—"मुझे लोकहित के लिए काम करना चाहिए—और मैं किसके लिए श्रम करता हू यह देखना चाहिए—केवल इसलिए कि प्राणियो म चेतना फूकू और इस ससार को कुछ सुखी बनाऊ।"

कलिंग विजय के बाद जो राज्याधिकारी और लोक जन यह आशा लगाए बठे थे कि उन्ह उच्चतर पद और स्वार्थसाधन के बहाने मिलेंगे उन्ह सम्राट अशोक के इस रख से बडी निराशा हुई, क्योकि शीघ्र ही उन्होने यह घोषणा भी शिलालेखो के द्वारा प्रसारित करा दी कि 'राज्य का एक बडा काम यह होगा कि देश और विदेश मे भगवान बुद्ध का करुणा विधान प्रचारित हो। पडोस के देशो मे ही नही, सुदूर देशो मे यूनानी देश के राजा अण्टिओकस से भी परे के देशो मे जहा टोलेमी, ऐण्टीगोनस, मागस और अलेग्ज़ेडर (सिकन्दर) राजा शासन करते हैं, मानव करुणा का यह सन्देश पहुच जाना चाहिए।"

वसे भारत मे ही दो स्वतन्त्र बने प्रदेश चोल और पाण्डय म उन्होने अपने प्रचारक पहले भेजे—श्रीलका मे उन्होने अपने भाई महेन्द्र को भेजा। नेपाल और कश्मीर ने भी बौद्ध धम के सिद्धान्तो को स्वीकार कर लिया और सीरिया, मिस्र, मैसोडी

निया और इपीरस तक बौद्ध धर्म के महोपदेशक जा पहुंचे।

पूर्व और दक्षिण पूर्व की ओर जिसमें आजकल ब्रह्मदेश, मलय, जावा, बाली, सुमात्रा, चीन हैं वहां और वहां से जापान तक बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए प्रचारक गए।

बाद में शिलालेखों में जो राजाज्ञा प्रसारित की गई उसमें करुणा का प्रसाद प्रजा पर बरसाते हुए सम्राट ने कहा—"सभी मनुष्य मेरे बच्चे हैं। मैं चाहता हूं कि उनका अगले संसार में भी कल्याण हो।" (शिलालेख २ १,४३) "यही बात मैं मनुष्यमात्र के लिए चाहता हूं।" (अश्वघोषकृत बुद्धचरित, २-३५)

"मध्यम मार्ग का ही अनुसरण शासन-कार्य में भी करना चाहिए।

"ईर्ष्या, क्रोध, क्रूरता, अधीरता, सुस्ती—ये सभी बातें मेरी नहीं हैं—त्याज्य हैं।"

(शिलालेख—इना०)

"सीमा (प्रान्त) के रहनेवालों के बारे में मैं यह इच्छा रखता हूं कि वे इस बात को समझ लें कि मैं (राजा) चाहता हूं कि वे डरें नहीं और मुझमें विश्वास रखें। उन्हें मेरी ओर से सुख ही मिलेगा—शोक नहीं। मैं उनकी वे सभी बातें सहन करूंगा जो सहन की जा सकती हैं और वे धर्म का आचरण करें।'

पाटलिपुत्र के बारे में शाहबाजगढ़ी के शिलालेख में सम्राट ने खुदवाया है

"यहां एक भी जीवधारी की हत्या नहीं की जाएगी। न कोई समाज—नृत्य, संगीत, कहानियां, बाजे-गाजे, ढोल-मजीरा का होगा।"

गिरनार के शिलालेख मे कहा गया है

"युद्ध के आह्वान की आवाज धर्म के आह्वान की ध्वनि हो जाए। नतिकता का प्रसार हो जाए—रथयात्रा, हस्तियात्रा का प्रचलन हो जाए।"

कलिंग (धौली) शिलालेख ६— 'शासन मे सुव्यवस्था होने पर भी कुछ व्यक्ति जेल-यातना के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और उससे कितने ही लोगो का अन्त होता है। इसलिए मध्यम मार्ग वाछनीय होता है।"

गिरनार के शिलालेख मे कहा गया है—" कृपालु सम्राट अशोक के राज्य मे और उसके पार्श्व मे स्थित चोल, पाण्डय, सत्यपुत्र, केरलपुत्र और ताम्रपर्णी म और ग्रीक राजा अण्ठिआक्स और उसके पडोसी राजाओ के यहा, सम्राट अशोक ने, दो प्रकार की चिकित्साए प्रचलित की है—एक तो मनुष्य-जाति की औषधिक चिकित्सा और दूसरी जानवरो की औषधिक चिकित्सा। मनुष्यो और पशुओ के लिए गुणकारी जडी-बूटिया बाहर से मगाई गई है और जहा उनके पौधे नही है वहा वे लगाई गई हैं।

" मूल (जडी बूटिया) और फलो के पौधे जहा नही है वहा लगाए जाए। सडको के किनारे कुए खुदवाए जाए और वृक्ष लगवाए जाए जिनकी छाया और फल का लाभ मनुष्यो और पशुओ को मिले।

(२)

" दयालु सम्राट (अशोक) ने धार्मिक अनुज्ञा द्वारा पशु वध बन्द करा दिया है और सभी जीवधारियो मे प्रतिहिंसा

पर रोक लगा दी है। ब्राह्मणो और श्रमणो के प्रति हिंसा का व्यवहार करने पर रोक लगा दी है और माता पिता तथा बडे-बुज़ुर्गों की आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया है।—

"सम्राट के पौत्र, पात्र और प्रपौत्र सभी इस नैतिकता का पालन करेंगे जिससे अन्त तक यह (परम्परा) कायम रहे। ये सभी स्वय धम का पालन करते हुए दूसरों को वसा करने का उपदेश देंगे, क्याकि यह सवश्रेष्ठ कतव्य है।"

गिरनार–५

"भूतकाल मे सभी पहाडियो मे शासन-सचालन और सूचनाए प्राप्त करने की व्यवस्था नही थी इसलिए मैंने यह व्यवस्था जारी की है कि सभी समयो मे—जब मैं भोजन कर रहा होऊ या अन्त पुर में होऊ अथवा पशुशाला मे, यहा तक कि मैं धार्मिक उपदेशो के स्थान मे भी क्यो न होऊ, इसी प्रकार मैं उद्यान मे होऊ, तो भी मेरे सन्देशवाहक वहा पहुचकर मुझे सन्देश दें, क्योकि मैं सभी जगह और सभी समय अपनी प्रजा (जनता) के काम के मामलो मे लगा रहूगा। और यदि सयोगवश मैं कोई दान या घोषणा की सूचना या महामात्रा को कोई काम सौंप रहा होऊ और उस सम्बन्ध मे कार्यवाही परिषद् हो रही हो तो भी एक क्षण का विलम्ब किए बिना उक्त सूचना मुझ तक सवत्र और तुरन्त पहुचाई जाए।

"मेरी आज्ञा से यह शिलालेख अकित हुआ।"

कलसी

सम्राट ने कलसी के शिलालेख मे कहा

"लोग विभिन्न प्रकार के रीति-रस्म सम्पन्न करते है जिनम शादी गमी, लडके लडकी का जन्म, यात्रा आदि सम्मिलित है। वे ऐसा अवश्य करें, किन्तु इसका कोई फल नही निकलता। रीति रस्म ऐसे मनाए जाए जिनसे धम की वृद्धि और लाभ हो। ऐसी रस्मे इस प्रकार हैं—'अपने नीचे काम करनेवालों और अनुयायियों के साथ समुचित व्यवहार, शिक्षकों के प्रति श्रद्धा भाव, जीवधारियों के प्रति हिंसा पर नियत्रण और ब्राह्मणों, श्रमणों तथा सन्यासियो के प्रति उदारता। य सब धम मगल हैं।"

गिरनार–१२

"दयालु और पवित्र सम्राट सभी पन्थों का आदर करते हुए यह मानत हैं कि सभी धार्मिक पन्थों के सारमर्म का विकास अनेक प्रकार का होता है फिर भी सबकी जड है—सयत भाषा। इसका अथ यह हुआ कि दूसरे पन्थ की अकारण निन्दा नही करनी चाहिए। उलटे दूसरे पन्थ का आदर ही करना चाहिए। इस व्यवहार से अपने ही पन्थ का विकास होता है।"

कुणाल

कुणाल

भारतीय इतिहास में कुणाल की कहानी इतनी करुणाजनक है कि सहस्रों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उसके उपकरण ताजे बने हुए हैं—वह इतनी ज्वलन्त, सजीव और मर्मस्पर्शी है कि उनको पढ़कर मनुष्य का हृदय पिघले बिना नहीं रह सकता।

कुणाल सम्राट अशोक की सन्तान थे और व सम्राज्ञी पद्मावती की कोख में पैदा हुए थे। जिस दिन उनका जन्म हुआ, सारा पाटलिपुत्र उद्दाम उल्लास से उमड़ पड़ा। राजा प्रजा सभी प्रसन्नता से नाच उठे। सार्वजनिक रूप में कितने ही उत्सव मनाए गए। मौर्यवंश का यह राजकुमार प्रभात की आभा के समान उद्दीप्त, सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्रमा के समान सौम्य था। उसकी आँखें ऐसी सुन्दर थीं कि जो देखता, देखता ही रह जाता। नवजात शिशु का नामकरण पहले धर्मविवर्धन रखा गया, पर पीछे उनकी विशाल और मनमोहक आँखें देखकर सम्राट ने सबके परामर्श से कुणाल पक्षी के नेत्रों के समान आँखें होने के कारण महाराजकुमार का नाम ही 'कुणाल' रख दिया। ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता गया उसके अंग-सौष्ठव और आकार वृद्धि के साथ उसकी आँखें अधिकाधिक आकर्षक और

गुरु की बातों पर गहरा चिन्तन करते हुए कुणाल अपने शयन-कक्ष में गया। बाहर वृक्षों पर माध्यकालीन किरणें अमराई में छनकर कक्ष के भीतर आ रही थीं। आकाश विविध रंगों से रंजित हो रहा था और अस्ताचलगामी सूर्य अपनी अन्तिम प्रतिभा दिखाकर लुप्त होनेवाले थे। पक्षी अपने अपने कोटरों की ओर उड़े जा रहे थे। आकाश में वायु प्रवाह का वेग वृक्षों के पत्तों और पक्षियों की उड़ान को चक्रावरकर पीछे ढकेल रहा था। किन्तु कुणाल के नेत्र प्रकृति के सौंदर्य और लीला की ओर आकर्षित नहीं हो रहे थे। अन्त में अपने शयन कक्ष में लेटे लेटे उन्होंने चन्द्रोदय का दृश्य देखा—फिर भी उनका मन गुरु यशस की बातों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका। संसार की सभी वस्तुएं नश्वर है—फिर सब कुछ त्यागकर भगवान बुद्ध की शरण में क्यों न जाया जाए।

सुदूर पाटलिपुत्र में वसन्त का उत्सव मनाया जा रहा था। लोग इस त्योहार की मस्ती में मुग्ध हो इधर-उधर दौड़ धूप, उछल कूद, राग रंग और नृत्य गान में निमग्न थे। सुंदर परिधानधारी नागरिक अपने मित्रों से हिल मिलकर आनन्द की हिलोरें ले रहे थे—सभी सुंदर वस्त्रधारी सभी सुंदर, सभी आनन्द हिलोरित, सभी विमुग्ध और तरंगित। नागरिकों को सामूहिक रूप में सम्राट के उद्यान में इस सान्ध्योत्सव में आमंत्रण था। घोषित किया गया था कि इस सान्ध्य कार्यक्रम में महाराजकुमार कुणाल एकान्तवास त्यागकर रंगमंच पर नाट्य में भाग लेंगे और नायक के रूप में भूमिका का अभिनय करेंगे। सभी राजपुरुष और राजा-सामन्त कमलनेत्र कुणाल के अभिनय का

अवलोकन करने आए थे। दर्शकों में महिलाएं भी कितनी ही थीं जिनमें सम्राट अशोक की नवसम्राज्ञी तिष्यरक्षिता की दिलचस्पी सबसे अधिक थी।

जब सारा अभिजात्यवर्ग एकत्रित हो चुका और उस मुक्त उद्यान में सब अपने अपने पद-गौरव के अनुसार बैठा दिए गए, तो चन्द्र की ज्योत्स्ना परिपूर्ण हो चुकी थी, अभिनेता-अभिनेत्रियों और दर्शक दर्शिकाओं—आबाल वृद्ध वनिता सभी के विनोद, हास्य और आनन्दोच्छ्वास से वायुमण्डल मोहक एवं मनोमुग्धकारी बन गया। दर्शकदल में जिधर महिलाओं का सौंदर्य सबको आकर्षित कर रहा था उधर नवसम्राज्ञी तिष्यरक्षिता का मुखमण्डल जैसे उस वातावरण में मोहिनी की मदिरा बखेर रहा था।

नाट्य अभिनय का यह उद्घाट आधी रात तक चलता रहा, यहां तक कि दर्शक जन उस अनन्त सौंदर्य-सागर में तरते तैरते न जाने कहां से कहां पहुंच गए, पर सहसा नाटक का मुखान्त निकट आ ही गया और पटाक्षेप के पश्चात जब दर्शकमण्डली बिखरने लगी और सम्राट अशोक चले गए तो उद्यान रिक्त होने लगा।

रात के तीसरे पहर जब अन्य नागरिक गहरी निद्रा में सो गए थे, और महाराजकुमार कुणाल अपने अभिनय के पश्चात् शयन-कक्ष में माधवी लता के पीछे उसके पुष्पों की सुगन्ध लेते हुए करवटें बदलते हुए सोने का उपक्रम कर रहे थे, सहसा एक सुरभित कामायनी उनके नेत्रों के सामने दृष्टिगोचर हुई। वह थाई अनिन्द्य सुन्दरी मुग्धा रमणी थी। पर ऐसे समय पर वहां कोई अज्ञात सुन्दरी उनके निकट आने का साहस कैसे कर सकती है।

क्षण-भर के दृष्टिक्षेप के बाद राजकुमार सहमकर उठ बैठे और उन्हें ऐसा लगा, यह तो कोई और नहीं, उनकी नवोढ़ा विमाता तिष्यरक्षिता है जो नाट्याभिनय के समय दर्शकवृन्द में अपनी कमनीयता, यौवन और चपलता से सबको आकर्षित कर रही थी।

जब तिष्यरक्षिता के अधर खुले तो उसके शब्दों को सुन कर जैसे कुणाल पर हिमराशि छा गई और उसका सारा शरीर सुन्न हो गया।

दूसरे ही क्षण जब कुणाल को यह ज्ञात हुआ कि तिष्यरक्षिता उससे क्या चाहती है, तो जैसे उसके पांव तले की जमीन खिसक गई।

तिष्यरक्षिता ने कुणाल की गहरी सांस और यह ठण्डा व्यवहार देखा तो जैसे उसके सौन्दर्य की दमक कराल काल की ज्वाला बन गई—विशेष कर कुणाल के होठों से जब रुक-रुककर ये शब्द निकले—"माता! आप मेरी माता होकर बेटे के सामने ऐसा अशोभनीय व्यवहार कैसे...?"

तिष्यरक्षिता का दर्प चूर हो गया। वह नागिन की तरह फुफकार उठी। उसका सुन्दर शरीर घृणा का भण्डार-सा बन गया।

"अच्छा, तुम्हारी यह मजाल—तुम मुझे उपदेश देने चले हो तो सुन लो! मैं तुम्हें महाराजकुमार नहीं रहने दूंगी और तुम्हारी जवानी की हरियाली को धूल में मिला दूंगी।"

कुणाल ने सम्हलकर कहा—"माताजी, मैं अपने कर्तव्य से विचलित होने की अपेक्षा मर जाना स्वीकार करूंगा, पर वह काम

न करूगा जिससे आपकी और मेरी प्रतिष्ठा धूल मे मिले। मैं सत्य और चरित्र को सबसे ऊचा स्थान दूगा।"

तिष्यरक्षिता ने कुणाल की ओर इस तरह देखा जैसे वह उसे डस लेगी और उसके अग से अपने क्षौम्य वस्त्र को रगडते हुए इस तरह आगे बढ गई जैसे वह कह रही हो—'अच्छा, मैं देखूगी कि तुम इस ससार को कसे देखते हो।'

जिन दिनो की यह घटना है उसी समय उत्तर मे तक्षशिला नगरी के राजा कुजरकण ने अशोक के वैभव और गौरव से सतप्त हो उसे युद्ध के लिए चुनौती भेजी और सम्राट उसे दण्ड देने के लिए राजधानी पाटलिपुत्र से तक्षशिला के लिए युद्ध-प्रस्थान करने ही वाले थे, किन्तु राजा के मन्त्रियो ने न जाने किस गुप्त अभिसन्धि से प्रेरित हो राजा को यह परामर्श दिया कि "महामहिम ! इतनी दूर जाकर एक तुच्छ शत्रु का आप स्वय पराजित करें, इसकी आवश्यकता नही है। इस काम के लिए तो महाराजकुमार कुणाल सर्वथा उपयुक्त हैं। अत उन्ह ही सेना सहित वहा भेज दिया जाए।"

सम्राट को बात जच गई और उन्होने कुछ सोच-समझकर महाराजकुमार कुणाल को बुलवाया और उसका समुचित सम्मान करते हुए कहा— 'मेरे प्रियतम वत्स ! मैं यह चाहता हू कि तक्षशिला के राजा कुजरकण को परास्त करने के लिए तुम स्वय सेना सहित वहा जाओ और यदि वह मेरी प्रभुता न स्वीकार करे तो उसे जीतकर पकड लाओ।"

कुणाल ने तुरन्त अपने पिता की आज्ञा का पालन किया और सेना लेकर तक्षशिला का प्रस्थान कर कुछ ही दिनो मे वहा जा

पहुंचा। बहुत थाडे प्रतिरोध के बाद कुणाल के बाहुबल के आग वह नतमस्तक हो गया। कुणाल यह काम पूरा कर लौटने का विचार कर रहा था कि राजा कुजरकण ने उसे सम्मानपूवक अपने यहा अतिथि के रूप मे ठहरा लिया। कुणाल को उसका व्यवहार अच्छा लगा और धीरे धीर वह उसकी मित्रता के पाश मे बध गया।

०

इधर पाटलिपुत्र म कुणाल की विजय क समाचार से उत्सव मनाया गया और सम्राट अशोक बडी उत्सुकता स अपन प्रियदर्शी पुत्र की वापसी की प्रतीक्षा करन लगे। उन्ह अब प्रतिक्षण कुणाल की याद सताने लगी और वे उसका स्मरण बहुत प्रेमपूवक करने लगे।

कुणाल जब बहुत दिना तक न लौटा और दिन पर दिन बीतने लग तो एक दिन सहसा सम्राट अशोक किसी अप्रत्याशित रोग से ग्रसित होकर बहुत पीडित हो उठे। उनका वह बीमारी ऐसी हठीली सिद्ध हुई कि राज्य क सभी चिकित्सक उनको स्वस्थ करने मे असफल हो गए। अशोक न कुणाल को भी शीघ्र लौटने का सन्देश भेज दिया, पर इसी बीच नवोढा सम्राज्ञी तिष्य-रक्षिता को कुछ ऐसी सूझी कि उसन एक ओर तो सम्राट को अपन उपाय से स्वस्थ करके मुहमागा वर मागन का अवसर प्राप्त कर लिया और दूसरी ओर यह सोचा, यदि कुणाल आ गया और राजा न उसे अपनी इस बीमारी की निराशा के कारण राजकाज से उपरत कर सिंहासन पर बिठा दिया तो कुणाल उसे, उसकी दुर्भावनाओ को जानते हुए, कही का न छाडगा। इसलिए

पहले कुणाल का अन्त कर देने की युक्ति करनी चाहिए। इसी गुप्त विचार से उसने, सम्राट से वर मागने का वचन मिलने पर, कहा—"तो क्या आप मुझे सचमुच मुहमागा वर देंगे ?"

"अवश्य !" सम्राट ने जोर देकर कहा।

तिष्यरक्षिता ने कहा—"तो मुझे सात दिन के लिए अपनी जगह शासन करने का अधिकार दे दीजिए। सात दिनों के बाद मैं आपका राजपाट आपको लौटा दूगी। मुझे इसीका शौक और चाह है।"

सम्राट ने सम्राज्ञी की मौलिक ढग की माग पर प्रसन्नता हो प्रकट की और उसे उसका वर दे दिया, जिससे सम्राज्ञी ही राज्यस्वामिनी बनकर राजाज्ञा निकालने लगी।

राज्याधिकार प्राप्त करके तिष्यरक्षिता ने अपनी कुणाल-सम्बन्धी योजना पूरी करने की ठान ली। सात दिन के अन्दर सब कुछ पूरा करना है। उसने अशोक की राजमुद्रा के साथ राजपत्र पर एक राजाज्ञा पत्र के रूप मे लिखकर राजा कुजरकण को तक्षशिला भेजने की तैयारी कर ली। उस पत्र मे उसने यह लिखा—"महाराजकुमार कुणाल यहा से बडा ही गर्हित कर्म—नवोढा विमाता के साथ अपराध करके बिना सम्राट की आज्ञा के तक्षशिला गया है, इसलिए उसके इस भीषण अपराध के बदले राजा कुजरकण उसकी दोनो आखें निकलवा ले और मौर्यवश के इस कलक को अपने राज्य से बाहर निकाल दे। इस राजाज्ञा का उल्लघन न हो।"

इस जाली पत्र मे अब एक ही कमी रह गई थी और वह थी सम्राट के हस्ताक्षर या हाथीदात वाली मुहर लगने की। मुहर

के बाद जाकर तिष्यरक्षिता का पत्र राजा कुजरकण के हाथ म पहुँचा दिया। राजा कुजरकण न लिफाफा खालकर पढा तो यह जानकर आश्चय मे डूब गया कि कुणाल के विरुद्ध अत्यन्त गर्हित अभियोग लगाया गया है और उसके लिए उसमे भी कठोर दण्ड की माग की गई है। राजा कुजरकण का आश्चय अभियोग की गम्भीरता को देखते कम हो गया। उसे यह सन्देह भी एक बार हुआ कि कुणाल विमाता के प्रति ऐसा पाप करने के अभियोग का अपराधी नही हो सकता, पर दूसरे ही क्षण उसे अपने कतव्य का भान प्रबल रूप मे हुआ। प्रत्येक पक्ष का दूसरा पहलू भी हुआ करता है परन्तु कुणाल के बारे म ऐसा निणय करने के पहले सम्राट ने विचार तो किया होगा—आखिर व अपनी सन्तान को, जिसे परम विश्वस्त मानकर ही उन्होने मुझसे लड़ने के लिए भेजा, अकारण दण्डित तो नही कर सकते।

फिर भी मैत्री भावना म भी कुजरकण न कई दिना तक उस पत्र की कायवाही स्थगित कर रखी। किन्तु ऐसी बात लम्बे समय तक दबाकर रखी नहीं जा सकती थी—तक्षशिला की जनता को भी उससे अवगत करना था। लोकमत कच्चे धागे की तरह होता है। जब सम्राट के दण्डाज्ञापूर्ण सन्देश की बात तक्षशिला की प्रजा को मालूम हुई तो उसमे बडी टीका टिप्पणिया और कानाफूसिया होने लगी, क्योकि अल्पसमय म ही वहा के प्रजाजन को महाराजकुमार कुणाल प्रिय बन गए थ।

राजा कुजरकण न काफी समय तक विचार किया और मित्रता एव सकोचवश बहुत समय निकल जाने दिया। किन्तु हर बात की सीमा होती है और सोचते सोचते राजा कुजरकण

इस परिणाम पर पहुंचे कि यदि सम्राट अशोक ही ऐसा क्रूरता-पूर्ण आदेश दे सकते हैं तो मैं कर ही क्या सकता हूं। अन्ततः उसने निश्चय कर लिया कि वह भीषण पत्र कुणाल को दिखा दिया जाए। किन्तु जब कुणाल ने वह पत्र देखा तो उसने क्षण-भर भी घबराहट या परेशानी प्रकट किए बिना अपना धैर्य कायम रखते हुए कहा—"तो इस आदेश का पालन किया जाना चाहिए—बिलकुल खुले रूप में, जिससे प्रजा को भी ज्ञात हो जाए कि आपने सम्राट के आदेश का पालन अक्षरशः किया है।"

०

शीघ्र ही एक दिन निर्धारित कर दिया गया। तक्षशिला के विशाल उद्यान में भारी भीड़ जमा हुई। महाराजकुमार कुणाल वहां लाए गए और उनके साथ वधिक भी। किन्तु जब आदेश के अनुसार आंखें निकालने की घोषणा पढ़ी गई तो बहेलिये ने साफ इन्कार करते हुए कहा—"महाराज, मैं आपकी इस आज्ञा का पालन नहीं कर सकूंगा।"

जनता सांस रोककर सुनती रही कि देखें आगे क्या होता है।

कुणाल ने वधिक से कहा—"जब तुम्हें आदेश मिल रहा है तो क्या नहीं कर सकते?"

"इसलिए कि मैं पागल नहीं हूं—मैं इस सुन्दरता की मूर्ति—चन्द्रमा की ज्योति का अपहरण नहीं कर सकता।"

फिर सन्नाटा छा गया। किन्तु कुणाल ने अपने भुजदण्ड और राजकीय मुकुट उतार दिए और कहा—"इन आभूषणों का पुरस्कार समझकर अपना काम पूरा करो।"

के बाद जाकर तिष्यरक्षिता का पत्र राजा कुजरकण के हाथ म पहुचा दिया। राजा कुजरकण न लिफाफा खालकर पढा तो यह जानकर आश्चय मे डूब गया कि कुणाल के विरुद्ध अत्यन्त गर्हित अभियोग लगाया गया है और उसके लिए उससे भी कठोर दण्ड की माग की गई है। राजा कुजरकण का आश्चय अभियोग की गम्भीरता का देखते कम हो गया। उसे यह सन्देह भी एक बार हुआ कि कुणाल विमाता के प्रति ऐसा पाप करने के अभियोग का अपराधी नही हो सकता, पर दूसरे ही क्षण उसे अपने कत्तव्य का भान प्रबल रूप म हुआ। प्रत्येक पक्ष का दूसरा पहलू भी हुआ करता है परन्तु कुणाल के बारे मे ऐसा निणय करने के पहले सम्राट ने विचार तो किया होगा—आखिर व अपनी सन्तान को, जिसे परम विश्वस्त मानकर ही उन्होने मुझसे लडने के लिए भेजा, अकारण दण्डित तो नही कर सकते।

फिर भी मनो-भावना से भी कुजरकण ने कई दिनों तक उस पत्र की कायवाही स्थगित कर रखी। किन्तु ऐसी बात लम्बे समय तक दबाकर रखी नही जा सकती थी—तक्षशिला की जनता को भी उससे अवगत करना था। लाकमन कच्चे धागे की तरह होता है। जब सम्राट के दण्डाज्ञापूण सन्देश की बात तक्षशिला की प्रजा को मालूम हुई तो उसमे बडी टीका टिप्पणिया और कानाफूसिया होने लगी, क्योंकि अल्पसमय म ही वहा के प्रजाजन को महाराजकुमार कुणाल प्रिय बन गए थे।

राजा कुजरकण ने काफी समय तक विचार किया और खिन्नता एव सकोचवश बहुत समय निकल जाने दिया। किन्तु हर बात की सीमा होती है और सोचते-सोचते राजा कुजरकण

इस परिणाम पर पहुंचे कि यदि सम्राट अशोक ही ऐसा क्रूरता-पूर्ण आदेश दे सकते हैं तो मैं क्या ही क्या सकता हूं। अन्तत उसने निश्चय कर लिया कि वह भीषण पत्र कुणाल को दिखा दिया जाए। किन्तु जब कुणाल ने वह पत्र देखा तो उसने क्षण-भर भी घबराहट या परेशानी प्रकट किए बिना अपना धैर्य कायम रखते हुए कहा—"तो इस आदेश का पालन किया जाना चाहिए—बिलकुल खुले रूप में, जिससे प्रजा को भी ज्ञात हो जाए कि आपने सम्राट के आदेश का पालन अक्षरश किया है।"

०

शीघ्र ही एक दिन निर्धारित कर दिया गया। तक्षशिला के विशाल उद्यान मे भारी भीड़ जमा हुई। महाराजकुमार कुणाल वहा लाए गए और उनके साथ वधिक भी। किन्तु जब आदेश के अनुसार आखें निकालने की घोषणा पढी गई तो बहेलिये ने साफ इन्कार करते हुए कहा—"महाराज, मैं आपकी इस आज्ञा का पालन नहीं कर सकूगा।"

जनता सास रोककर सुनती रही कि देखें आगे क्या होना है।

कुणाल ने वधिक से कहा—"जब तुम्हे आदेश मिल रहा है तो क्या नहीं कर सकते ?"

"इसलिए कि मैं पागल नहीं हू—मैं इस सुन्दरता की मूर्ति—चन्द्रमा की ज्योति का अपहरण नहीं कर सकता।"

फिर सन्नाटा छा गया। किन्तु कुणाल ने अपने भुजदण्ड और राजकीय मुकुट उतार दिए और कहा—"इन आभूषणों को पुरस्कार समझकर अपना काम पूरा करो।"

पहली मंजिल है। अब आप सब घर जाएं। मेरे आशीर्वाद आपके साथ होंगे।"

तक्षशिला के राजमहल में अब तक एक ऐसी विश्वासपात्र आत्मा थी जो आज के इस कृत्य की कोई जानकारी नहीं रखती थी। वह थी कुणाल की प्रियतमा कंचनमाला। जब उसे यह भीषण समाचार मिला तो वह राजमहल में घटनास्थल की ओर दौड़ी। वहां कुणाल को उनके परम सुन्दर नेत्रों से हीन अवस्था में देखा तो वह घुटना के बल कुणाल के पास बैठ गई—'आर्यपुत्र यह क्या हो गया?' वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी और लोगों ने उसे सम्हाला। वह रो-रोकर कुणाल से बोली—"अब मैं अपने इस जीवन का सार क्या करूंगी?" लोगों ने कुणाल को उसके निकटतर पहुंचाया। कुणाल अपनी अन्तर्दृष्टि के प्रकाश में बोला—'कंचनमाल, प्रत्येक व्यक्ति को संसार में अपने किए का प्रतिफल मिलता है। इस संसार का कर्मफल मानकर दुर्भाग्य-लिप्त प्राणियों को दुर्दशाग्रस्त देखकर मानव का निर्माण अपने प्रिय पात्रों से विहीन होने के लिए ही होने की बात को समझकर तुम्हें रोना नहीं चाहिए प्रिय।"

शोकमतप्त भीड़ में से एक जुलूस, जिसमें कुणाल था, धीरे-धीरे कुंजरकर्ण के राजमहल की ओर लौटा और नेत्रहीन कुणाल ने वहां कुंजरकर्ण को सम्बोधन करते हुए कहा—"मेरे राजकीय मित्र, क्या मुझे पत्नी के शोक-सताप [illegible] जाने तक आप अपने राजप्रासाद में कुछ दिन और ठहरने [illegible] करेंगे?"

'आप [illegible] क्योंकि [illegible]

का आ

आज्ञा का पालन नहीं करूंगा। जो कुछ हो गया वही बहुत है।"

इसके बाद कुणाल-दम्पती थोड़े समय तक अपने मानसिक और शारीरिक उपचार के लिए राजमहल में और ठहरा। उन पर जो विपत्ति पड़ी थी उससे उनका अस्तित्व मिट-सा गया था और शारीरिक विपन्नता के कारण उनको आगे भी कष्टमय जीवन ही व्यतीत करना था।

कुछ दिनों के बाद कुणाल ने अपनी पत्नी से कहा—"प्रिये, मैं अब अपने पिता की राजधानी से तो निर्वासित हो ही गया हूं। ऐसी अवस्था में तुम क्या करोगी और कहां जाओगी? क्या तुम अपने पिता के यहां शरण लेना पसन्द करोगी?"

कंचनमाला ने पूरे धैर्य और दृढ़ता के साथ अपने मनोभाव प्रकट करते हुए कहा—'आर्यपुत्र, ऐसे कठोर शब्द न कहो जो मुझे अपने प्राणप्रिय से पृथक् होने के सूचक हों। मैं तुम्हारी छाया होकर रहूंगी चाहे जो हो, आप जहां जाएंगे मैं आपके साथ रहूंगी। बुराई भलाई जो भी आएगी उसमें मैं भाग लूंगी।"



उसी दिन सन्ध्या समय कुणाल दम्पती ने राजा कुंजरकर्ण से विदा ली। तक्षशिला वे राजकीय सम्मान के साथ आए थे और अब वहां से भिक्षुक के रूप में केवल एक वीणा हाथ में ले बाहर निकल पड़े।

पाटलिपुत्र की वापसी की यात्रा कैसी भिन्न थी! न कोई साधन न सामग्री, वाहन और भृत्य या रक्षक। यात्रा का कष्ट मिटाने के लिए मनोरंजन का कोई साधन नहीं और न खाद्य-सामग्री। सामान्य आवश्यकता-पूर्ति के लिए भी उन्हें असह्य

कष्ट उठाना पड रहा था। ऐसी घोर परीक्षा के समय आर्यकन्या ने अपने अक्षम पति की सेवा जिस श्रद्धा, निष्ठा और लगन के साथ की वह एक आदर्श के रूप मे कही जा सकती है। कुणाल ने जीवन मे सामान्य श्रम और यात्रा कष्ट नही सहा था इसलिए उनका वह भार और कष्ट उस आर्यकन्या ने अपने कन्धो पर ले लिया। कुणाल को वीणा बजा लेने के सिवा और कुछ ऐसा नही आता था जिससे वह अपने दु ख का भार हल्का करता। वे धीरे-धीरे अपनी यात्रा के कष्ट से अभ्यस्त होकर आगे की मजिलें काटने लगे। कुणाल मार्ग के गावो मे रुककर वीणा बजाने लगता तो लोग अनायास इकट्ठे हो जाते और उनके खाने पीने भर का दे देते। इस तरह उनका लम्बा पथ भार एक-एक दिन करके कठिनाई से कटने लगा। वे जिस प्रकार के चीथडो मे थे उससे कोई स्वप्न मे भी यह कल्पना नही कर सकता था कि वे सम्राट और पुत्रवधू हैं।

अन्तत वसन्त ऋतु निकट आने लगी और सयोगवश वसन्त पचमी के दिन ही यह दम्पती पाटलिपुत्र पहुचा। दोनो ने परस्पर परामर्श किया कि उनके लिए अच्छा क्या होगा। निश्चय हुआ कि एक बार तो सम्राट तक पहुचने का प्रयत्न करना ही होगा। कुणाल को यह विश्वास नही था कि अब उसे देखकर कोई पहचान सकता है। फिर भी किसी दयालु द्वारपाल की दया से उन्हे यह अवसर मिल गया कि वे रथ सारथियो के बीच अश्व शाला के निकट रात काट ले। वह रात्रि उन्हे पहाड सी प्रतीत हुई।

उषाकाल तक अपनी दशा का भान करते-करते कुणाल का

नींद नहीं आई। जब प्रभात निकट आ गया तो कुणाल ने अपनी वीणा उठा ली और उसके तार छेड़ दिए जिससे उसके संतप्त हृदय को थोड़ी ठंडक मिल जाए। वह वीणा वादन ही जैसे कुणाल के जीवन की रागिनी बन गया। उसके स्वर गुंजार से सारा राजप्रासाद आन्दोलित हो उठा और स्वर लहरियों ने सोए-अधसोए और जागत सभी को जैसे आत्मविभोर कर दिया। वह वीणा वादन के साथ जिस स्वरचित कविता का गान कर रहा था उसमें उसके जीवन की बाल्यकालीन घटनाओं से लेकर उसकी आँखें निकाले जाने तक का स्वरचित पद्यबद्ध करुणामय प्रसंग आता था। उसका कण्ठस्वर और वीणा की तान ने मिलकर प्रभात के मन्द वायु में ऐसी करुण धारा प्रवाहित कर दी जिसका प्रभाव हर हृदय पर पड़ना अनिवार्य हो गया। रागिनी में बाहरी आँखें निकाले जाने पर अन्तर्दृष्टि की बौद्धिक आभा का विकास किस प्रकार हुआ और उसके आनन्द में नेत्रहीनता का तथा अन्य शारीरिक कष्ट किस प्रकार तिरोहित हो गए, यह प्रसंग उसने जैसे आत्मा की स्फूर्ति के साथ वायुमण्डल में प्रवाहित कर दिया। उसकी स्वरचित कविता की वह कड़ी जिसमें ज्ञान के शुद्ध एवं दिव्य आलोक के जागरण का वर्णन था, उसमें कहा गया था कि जो अन्तर्दृष्टि से देखने की क्षमता प्राप्त कर लेता है वह आवागमन के बन्धनों से मुक्त हो जाता है और जो इस संसार में दुखी, चिन्तित, पीड़ित, अस्तित्व के भार से आक्रान्त है उसे इन्द्रियगम्य वस्तुओं के भोग का त्याग कर देना चाहिए।

गायन और वाद्य की यह ध्वनि सम्राट अशोक के शयन-कक्ष में प्रविष्ट हो रही थी और वे उसे पहले निद्रावस्था में, फिर अध-

निद्रावस्था मे और अन्तत जाग्रत् अवस्था मे सुनकर आश्चय-मुग्ध हो रहे थे कि आज ऐसी लय मे सुबह-सुबह यह रागिनी कौन छेड रहा है। प्रसन्नतापूवक उनके मुह से यह निकल गया—"यह तो कोई चिरपरिचित कण्ठस्वर लगता है। हा हा, यह तो मेरे प्रिय पुत्र कुणाल की आवाज़ लगती है। ऐसी वीणा भी वही बजाता था—बिलकुल वसी ही लगती है। क्या वह लौट आया और मुझे उसकी सूचना तक नही मिली ?"

सम्राट ने अपने अगरक्षक के द्वारा द्वारपाल को बुलवाकर पूछा—"द्वारपाल, सुनो तो ! क्या यह कण्ठध्वनि महाराजकुमार कुणाल की सी नही लगती ? पर इस ध्वनि मे ऐसी करुणा पहले कभी नही सुनी थी और वह मेरी आत्मा मे इस प्रकार पहले नही छुवी जैसी वह आज मुझे उद्वलित कर रही है। मुझे ऐसा लगता है कि मैं वह हाथी हू जिसका बच्चा गुम हो गया है। तुम जाकर देखो—निश्चय ही यह कुणाल की आवाज़ है और वीणा वादन भी उसका सा ही है। जाओ, खोजकर लाओ कौन कहा से गा रहा है।'

द्वारपाल ने जाकर अश्वशाला के पास से सारथियो के बीच वीणा बजाते हुए नेत्रहीन कुणाल को, प्रात कालीन प्रकाश मे धूलि धूसरित अवस्था मे मग्न होकर गाते-बजाते देखा। उसने देखा कि यह व्यक्ति तो यो ही अपनी मस्ती म गा रहा है—उसका किसीसे कोई सम्पक नही है, न कोई उसकी ओर आकर्षित हुआ है। द्वारपाल ने लौटकर सम्राट को सूचना दी—"महाराज, यह तो एक अधा भिखारी है जो अश्वशाला के पास सारथियो के बीच रात काटने को सो गया था। अब उठकर गा रहा है—

उसकी पत्नी भी उसके साथ है।"

इस सूचना से सम्राट अशोक बहुत चिंतित हुए। उनको अब लगा कि उनका वह भयानक सपना अब साकार हो गया दीखता है। उन्हें अब लगा कि कुणाल की आखें कैसे और किस षड्यन्त्र से निकलवाई गई होगी।

"जल्दी जाओ और उस अंधे भिखारी को तुरन्त यहां लाओ। मेरे पुत्र पर अवश्य ही भारी विपत्ति आ पडी है।" कहकर सम्राट रो उठे।

द्वारपाल फिर अश्वशाला के निकट रथागार मे पहुचा और जल्दी से वहा पहुचकर अंधे भिखारी से पूछा

"आपका नाम क्या है? आप किसके पुत्र हैं?"

अंधे भिखारी ने द्वारपाल की ओर मुह करके कहा—"मेरे पिता का नाम सम्राट अशोक है और मुझे कुणाल कहते हैं। किन्तु अब मैं उस बुद्ध भगवान का पुत्र हू जिसने दैवी विधान की रचना की है।"

द्वारपाल ने दोनो पति पत्नी को जल्दी से वहा पहुचाया जहा सम्राट अशोक आतुर हो प्रतीक्षा कर रहे थे।

सम्राट उन दोनो के पहुचते ही उन्हें राजप्रासाद के उस भाग मे ले गए जो वाटिका से मिलता था। वाटिका के वृक्षो पर वसन्त छाया था और माधवीलता के पुष्प की गन्ध अंधे कुणाल के नासिका रन्ध्रो मे प्रवेश कर रही थी। पक्षियो की कर्णप्रिय चहक उसके कानो मे गूज रही थी। किन्तु सम्राट को वसन्त की शोभा और उसकी बहार से जसे कोई सम्बन्ध नही था—वे उस अंधे भिखारी को जिसके शरीर पर अकाल वार्धक्य और झुर्रिया

दिखाई देने लगी थी, ध्यान से देख रहे थे—धूप की तपन और वायु के झोकों ने उसे बदल दिया था। उसके पुराने राजकीय वस्त्र मैले और गन्दे होकर भी जैसे उसके पूर्व गौरव की कहानी कह रहे थे। सम्राट सोच रहे थे कि यदि यह कुणाल है तो इससे बातचीत कैसे आरम्भ की जाए। कुणाल के शरीर में शक्ति नहीं रह गई थी। इसलिए सम्राट ने उससे निश्चित रूप में जानने के लिए पूछा—"क्या तुम कुणाल हो ?"

"हां, मैं अवश्य ही कुणाल हूं—अशोक का बेटा कुणाल।"

इस उत्तर से सम्राट का शरीर सिहरकर सुन्न हो गया और वे लड़खड़ाकर अपने पुत्र के पैरों के पास ही लुढ़क पड़े।

राजा के पुराने मंत्री ने आगे बढ़कर उन्हें सम्हाल लिया और जब उनकी दशा कुछ सुधर गई तो उन्हें पास ही आराम के साथ बिठा दिया गया।

फिर अशोक ने कुछ सुस्थिर होते ही कहा—'मेरे प्यारे बेटे ! मेरे शासन के यशस्वी अधिकारी, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ? तुम अपने कमलनेत्रों से कैसे वंचित हो गए ?"

इस प्रश्न पर कुणाल ने अपने पिता को वह लम्बी कहानी सुनाई जिसकी रचना उनके नाम पर सम्भवतः षड्यन्त्रपूर्वक करके तथा उसके ऊपर लागू करके उसको नेत्रहीन बना दिया गया। जब वह कहानी समाप्ति पर पहुंची तो कुणाल ने कहा—"अब जो तिष्यरक्षिता मुझपर मुसीबतों का पहाड़ ढाकर, मुझे मेरे नेत्रों से—बाहरी दृष्टिशक्ति से वंचित करके मुझे अन्तर्दृष्टि प्रदान करने का कारण बनी, उसे दीर्घकालीन सुख, जीवन और अधिकार मिले।"

सम्राट ने तुरन्त एक आदेश दिया और बिजली की सी चपल गति से भृत्यों ने सम्राज्ञी तिष्यरक्षिता को सम्राट की सेवा में ला उपस्थित किया। सम्राट के मन में उसे देखकर ऐसी क्रोधाग्नि भड़की कि उन्होंने अपने आग्नेय नेत्रों से उसे घूरकर कहा—"क्रूर स्त्री, यह धरती फट क्यों नहीं जाती कि तू उसमें समा जाए? आज रात आने के पहले ही तुझे अपनी क्रूरता, धोखे और षड्यन्त्र के कारण प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। मैं तेरा त्याग करता हूं। मैं तेरी आंखें भी उसी तरह निकलवाऊंगा जिस प्रकार मेरे पुत्र की निकाली गई हैं। तुम्हारी भारी दुर्गति करके ही तुम्हें फांसी के खम्भे पर लटकाया जाएगा।"

सम्राट की इस घोषणा के बाद कुछ देर सन्नाटा छाया रहा। किन्तु सम्राट के बूढ़े मन्त्री ने धैर्यपूर्वक उठकर उपदेशात्मक ढंग में कहा—"सम्राट! महामहिम धर्मरक्षक! आप भगवान बुद्ध के अनुयायी हैं जिनका कहना है—हिंसा न करो, क्योंकि करुण व्यक्ति ही करुणा प्राप्त करने का अधिकारी है—अहिंसा ही हिंसा का समुचित उत्तर है।"

कुणाल अब तक शांत होकर महामन्त्री की बात सुन रहा था, अब वह सम्राट के चरणों में गिरकर बोला—"सम्राट! तिष्यरक्षिता का वध करना आपकी अप्रतिष्ठा का कारण होगा। स्त्री-हत्या यों भी वर्जित है। आपका पुत्र कुणाल अब सभी कष्टों से परे है। मेरे अन्तरतम में अपनी इस मां के प्रति भलाई की भावना है, भले ही इन्होंने मेरी आंखें निकालने का षडयन्त्र और आदेश किया। इससे मेरी बाहरी आंखें गईं, पर अन्दर की आंख खुल गई। मैं अब भगवान की उस करुणा को, जो अहिंसा की

कुण्डलकेशा

उन दिनों राजगृह की शोभा निराली थी। चारों ओर प्रकृति के सौन्दर्य का निखार छाया हुआ था। उस अलौकिक छटा के बीच मानव निर्मित प्रासाद तत्कालीन राज्य वैभव का परिचय दे रहा था। नगर के बीचोबीच चार राजमार्गों के सन्धिस्थल पर नगरसेठ का भव्यतम महल देश विदेश में चर्चा का विषय बन चुका था।

नगरसेठ ने अपनी एकमात्र सन्तान, भद्रा, को अनोखे लाड-प्यार से पाला था। उसकी कोई भी बात टाली नहीं जाती थी। छोटी से बड़ी तक उसकी इच्छाएं और मांगें पूरी की जाती थीं। इस पैतृक प्रेम और सम्पत्ति के विपुल विलास में भद्रा का सुकोमल विकास हुआ।

भद्रा को पिता की ओर से पूरी स्वतन्त्रता थी। वह हर प्रकार के जलसे-जुलूस मेले ठेले, नाटक, गोष्ठी और सभा समाज में जाती और चर्चाओं में खुलकर भाग लेती थी। धर्मगुरुओं में भी उसकी श्रद्धा थी। भगवान बुद्ध के उपदेशों का उसपर प्रभाव पड़ चुका था। बड़े से बड़े धार्मिक मठ और राजप्रासाद उसके लिए खुले थे। वह सभी जगह स्वच्छन्द रूप से जाती, सभी प्रकार की

कुण्डलकेशा

उन दिनों राजगृह की शोभा निराली थी। चारों ओर प्रकृति के सौंदर्य का निखार छाया हुआ था। उस अलौकिक छटा के बीच मानव निर्मित प्रासाद तत्कालीन राज्य वैभव का परिचय दे रहा था। नगर के बीचोबीच चार राजमार्गों के संधिस्थल पर नगरसेठ का भव्यतम महल देश विदेश में चर्चा का विषय बन चुका था।

नगरसेठ ने अपनी एकमात्र सन्तान, भद्रा, को अनोखे लाड प्यार से पाला था। उसकी कोई भी बात टाली नहीं जाती थी। छोटी से बड़ी तक उसकी इच्छाएं और मांगें पूरी की जाती थीं। इस पैतृक प्रेम और सम्पत्ति के विपुल विलास में भद्रा का सुकोमल विकास हुआ।

भद्रा को पिता की ओर से पूरी स्वतंत्रता थी। वह हर प्रकार के जलसे जुलूस मेले ठेले, नाट्य, गोष्ठी और सभा समाज में जाती और चर्चाओं में खुलकर भाग लेती थी। धर्मगुरुओं में भी उसकी श्रद्धा थी। भगवान बुद्ध के उपदेशों का उस पर प्रभाव पड़ चुका था। बड़े से बड़े धार्मिक मठ और राजप्रासाद उसके लिए खुले थे। वह सभी जगह स्वच्छन्द रूप से जाती, सब प्रकार की

वाते सुनती और अपने विनम्र, भद्र एव आप्तजनोचित व्यवहार से सबको प्रसन्न करती थी। स्त्रियो और लडकियो मे भद्रा का भाग्य ईर्ष्या का विषय बना हुआ था।



श्रेष्ठि कन्या जब षोडशीया हुई तो उसमे बालसुलभ अवस्थाचित चचलता भी आई और अपनी अवस्था के लडके-लडकिया के साथ उसका मेल जोल भी बढा। वह पिता की लाडली और एकमात्र सतान होने के कारण मुक्त विचरण तो करती थी, पर उसकी भी सीमाए थी जिनका अतिक्रमण वह कभी कभी ही करती थी।

उन दिनो बौद्ध धम का प्रभाव राजा-रक, ऊच नीच और पढे-अपढ सभीपर था। प्राय यह एक प्रचलन हो गया था कि छोटी अवस्था के वालक-बालिकाए बौद्ध धम ग्रहण कर अपन मा-बाप का नाम रोशन करते थे। भद्रा ने भी समय आने पर मठा के सम्पक से अपनी यह आध्यात्मिक लिप्सा साध ली और उसे भिक्षुणी बना लिया गया।

नगरसेठ नही चाहते थे कि उनकी वह एकमात्र सतान धम की दीक्षा लेकर भिक्षुणी बन जाए। पर उन दिनो यह पद पाना नगरश्रेष्ठि की पुत्री और स्वय नगरसेठ के श्रेष्ठतर सम्मान की बात थी। ऐसी अवस्था मे नगरसेठ के लिए और कोई ऐसा माग शेष नही रहा कि वे अपनी पुत्री की इस शुभ इच्छा का अपना समथन प्रदान न करें।

भद्रा का सम्पक अब उच्चतर धर्माचार्यों, राजपुरोहितो, शास्त्रियो एव साहित्यिक सभा मे बढा। वह नगर के उच्चतम

बौद्धिक वर्गों में मुक्त प्रवेश पा गई और सभी जगह उसे रूप, गुण, ज्ञान और विलक्षण प्रतिभा के साथ साथ भिक्षुणी के समादरणीय पद के कारण श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाने लगा।

भद्रा पुष्पवर्ग की जिन मण्डलियों में मुक्त विचरण करती थी उनमें से राजपुरोहित का पुत्र सुत्थुक एक था जो विद्या, विनय, रूप और गुण में कुण्डलकेशा से आगे नहीं तो पीछे भी नहीं था। कुण्डलकेशा उसके रूप गुण पर आसक्त हो गई और उससे नित्य शास्त्र, धर्म और साहित्य चर्चा किया करती थी।

राजपुरोहित के पुत्र सुत्थक में जहां अनेक सद्गुण थे वहां एक ऐसी आदत भी थी जिसे उस युग के कानून के अनुसार अपराध माना जाता था। एक बार संयोगवश वह एक ऐसे ही अपराध-रूपी पंक में फंस गया जिससे पुलिस के अधिकारियों ने उसे बन्दी बना लिया।

भद्रा के लिए यह वज्रपात-सा था। उसने यह दुःखद समाचार सुना तो अन्न जल ग्रहण करना त्याग दिया। अन्त में नगरसेठ का सब रहस्य मालूम हुआ तो उन्होंने पुलिस अधिकारियों का लम्बी घूस देकर पुरोहित पुत्र को बचा लिया।

नगरसेठ ने पहले तो यह प्रयत्न किया कि भद्रा एक भिक्षुणी के नाते पुरोहित-पुत्र से सम्पर्क त्याग दे—यहां तक कि उससे मिलना जुलना भी बन्द कर दे, किन्तु इसपर कुण्डलकेशा ने फिर अन्न जल का त्याग कर दिया और यह प्रतिज्ञा कर ली कि वह या तो पुरोहित पुत्र को प्राप्त करेगी या प्राणत्याग कर देगी।

नगरसेठ उसकी इस प्रतिज्ञा से बहुत चिंतित हुआ, किन्तु

कुण्डलकेशा को अपनी प्रतिज्ञा पर अटल देख उसने भद्रा का हाथ पुरोहित पुत्र सुत्य को समर्पित कर दिया। कुण्डलकेशा को उसके बाप ने विपुल मूल्यवान रत्नाभूषण दिए जिससे वह सुत्य के साथ सुख से रहने लगी।

किन्तु पुरोहित-पुत्र सुत्य में जो बुरी आदत थी उसका अब काफी विकास हो गया। वह पहले दूसरों पर अपने हस्तलाघव की पटुता का प्रयोग करता था—बड़े बड़े सेठ साहूकारों और राजपुरुषों को अपने हाथ की सफाई दिखाता था, पर अब उसके घर में ही प्रचुर सम्पत्ति की स्वामिनी आ चुकी थी। उसने भद्रा के बहुमूल्य मणि-माणिक्यों पर हाथ साफ करने के इरादे से एक झूठा बहाना बनाकर एक दिन कहा—"भद्रे, मैंने एक बात तुमसे अभी तक नहीं कही थी। मैं जब पूर्ववर्ती अभियोग में पुलिस द्वारा पकड़ा गया था तो मन ही मन यह मनौती मानी थी कि यदि किसी प्रकार उस अभियोग से मुझे मुक्ति मिल गई तो मैं स्थानीय देवता की पूजा करूंगा। अब वह अवसर आ गया है। इसलिए पूजा के लिए अर्घ्य तैयार कर दो।"

भद्रा ने पूजा के लिए प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य तैयार कर दिया और वस्त्राभूषण से सुसज्जित हो पति के साथ देवस्थान को चल दी। रास्ते से ही सुत्य ने भद्रा की सेविकाओं को वापस लौटा दिया और अकेली भद्रा को साथ ले पर्वत पर चढ़ने लगा। सुत्य ने अपना रुख काफी चढ़ाई के बाद बदल दिया। पर भद्रा तो उस पर प्रेमासक्त थी। इसलिए उस ओर लक्ष्य नहीं कर सकी।

जब भद्रा के थक जाने पर भी सुत्य उसे लेकर ऊपर बढ़ता ही गया और अन्त में एक ऐसी चोटी पर पहुंच गए जो बिलकुल

सुनसान, बीहड और घाटियों मे आवेष्ठित थी तो सुत्यने कहा—"भद्र, बस अब हम अपने लक्ष्य तक पहुच गए हैं। तुम साडी के सिवा सभी आभूषण यही उतार दो।'

भद्रा कुछ सकपकाकर बोली—'क्यो, स्वामी ? क्या मुझसे कोई अपराध बन पडा है ?"

सुत्य ने कहा—"तो क्या तुमने यह समझा था कि मैं सचमुच देवता को अर्घ्य देने यहा आया हू ?"

भद्रा ने विनती की—"किन्तु स्वामी, मैं और ये सभी आभूषण तो आप ही के है।"

सुत्य ने कहा—"मैं कुछ नही जानता।"

भद्रा सीधी और विनम्र अवश्य थी, पर वह थी प्रत्युत्पन्नमति। वह सुत्य के आदेशानुसार आभूषण उतारने को तैयार हो गई और ऐसा करने को प्रस्तुत होकर उसने सुत्य से प्रार्थना की—'आर्य ! मैं आपकी आज्ञा का पालन कर रही हू, किन्तु आप मेरी एक इच्छा का पालन करने की कृपा करें। मुझे ये वस्त्राभूषण पहने हुए ही एक बार अपना आलिंगन कर लेने दें।"

धूर्त और दुष्ट सुत्य नारी के इस आवेदनको मान गया। भद्रा ने आवेदन का छल करके उसे एक ऐसा प्रबल धक्का दिया कि कगार पर खडा सुत्य घाटीमे हजारो हाथ नीचे गिरकर चकनाचूर हो गया और फिर सास न ले सका।

भद्रा अपनी इस चतुरता से प्रसन्न होकर भी सोच मे पड गई। उसने सोचा—'अब मुझे इस अवस्था मे घर लौटना ठीक नही है। मुझे इस ससार का त्याग कर देना चाहिए।'

इस प्रकार विचार करके वह एक आश्रम मे चली गई और

वहा अपने सुन्दर केशो का लुचन कर (उखाड) दिया। लुचन के बाद उसके केश फिर घुघराले होकर उगे। उन घुघराले केशो के कारण उसका नाम ही कुण्डलकेशा पड गया।

अपने इस उत्तर जीवन में कल्याणपाना और पुण्य-लिप्सा की शिकार भद्रा तर्कशास्त्र का अध्ययन करने लगी और थोडे ही समय मे वह उस जनपद की विख्यात वाग्मी और तर्कपण्डिता मानी जाने लगी। आश्रम की शिक्षा समाप्त कर वह वाद-विवाद करती हुई ज्ञान की खोज म सर्वत्र भ्रमण करने लगी। वह शास्त्रार्थ मे ऐसी कुशल वन गई कि उसके सामने बडे बडे पण्डित विचलित होकर उखड जाते थे।

कितने ही विद्वानो को शास्त्रार्थ मे हराते हुए वह धम-सेनापति सारिपुत्त के यहा पहुची और वहा उनके साथ शास्त्रार्थ म परास्त होने के पश्चात् उनके चरणो मे गिरकर पूछा

'मेरा व्रत पूरा हुआ भन्ते ! मैं आपकी शरण लेती हू !"

किन्तु सारिपुत्त ने इस बात का विरोध करते हुए कहा—"भद्रे, तू मेरी शरण नही भगवान बुद्ध की शरण ले। तू उनके ही निकट जा—इस युग म एक वही शरेण्य हैं।'

भद्रा केशकुण्डला ने भगवान बुद्ध के निकट जाकर वहा अपनी विनम्रता, वाग्मिता और विद्वत्ता का परिचय देकर उनसे शरण मागी। थोडे ही समय मे उसने कठय पद—आ पीछे का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया।

गांधी

गाधी

महात्मा गाधीजी ने दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयों की घोर दुर्दशा देखी—वे मनुष्यता के सामान्य अधिकारों से भी वचित थे। उन्हें तरह-तरह के अतिरिक्त कर देने पड़ते थे। टिकट लेकर भी रेल के पहले या दूसरे दर्जे मे वे सफर नहीं कर सकते थे। वे सभी जगहों और सभी मौकों पर दुरदुराए जाते थे। गोरों के सामने उनकी हैसियत, मनुष्य की कौन कहे, जानवर की भी नहीं थी। उनके खिलाफ काले कानून बने। उन्हें मान्यता के मामूली अख्तियारों से भी महरूम किया गया। उन्हें प्रदेश मे रहने की मनाही—प्रवेश करने पर रोक लगा दी गई। वे सभी जगह कुली कहे जाते थे। और तो और स्वय गाधीजी को 'कुली बैरिस्टर' कहा गया। रगभेद, जातिभेद और घृणा का यह घोरतम रूप भारतीयों के विरुद्ध दक्षिण अफ्रीका मे व्याप्त था।

भारतीयों के साथ यह दुर्व्यवहार देखकर गाधीजी का खून खौल उठा, पर वे दबले नहीं। उन्होंने जोश को दबाकर ठडा कर दिया और उसका उपयोग बुद्धिमत्तापूर्वक सोच-समझकर करने के लिए स्थगित कर दिया। उन्होंने सत्याग्रह का अभिनव अस्त्र आयोजित किया और उसी आदोलन के लिए वहा स्थित

मारे भारतीयो को तैयार कर लिया।

इस तैयारी के साथ सबसे पहले उन्होने सत्याग्रह के परिणाम भुगतने की तैयारी कर ली—जेल जाना, यातनाए सहना, सजाए भोगना, अनशन करना और जान की बाजी लगा देने की पूरी तैयारी उन्होने सबप्रथम खानगी रूप मे और पीछे सामूहिक रूप मे कर ली।

अपने विचारो की दढता प्रदर्शित करने के लिए उन्हान स्पष्ट कहा

"इस समय तो यह बात है। मैंने जो बताया है उसके विरुद्ध यदि सारी दुनिया हो तो भी मुझे निराशा होनेवाली नही है। यह कोई घमड से भरा वचन नही है, अपितु स्वय अच्छे बनें यह मनोरथ है, यही मनोरथ होना चाहिए। बाकी सब गलत है। जिसने आत्मा को जाना नहीं, उसने कुछ नही जाना। रावण के उत्साह का अनुकरण करके हम आत्मा की ओर मुडें।'

और फिर अपने उन पत्रो मे उन्होंने अपने विचार दढता का प्रतिपादन और भी स्पष्ट और विस्तत रूप मे किया जो उन्हाने अपने भतीजे मगनलाल और पुत्र मणिलाल गाधी को लिखे

जीवन-प्रभात—पृ० १७६

चि० मगनलाल,

आत्मा के अतिरिक्त सब कुछ क्षणभगुर है, इस विचार को हर समय दोहराते रहना आवश्यक है। यही नही, उससे सम्बन्धित कार्य म सतत सलग्न रहना चाहिए। ज्यो-ज्यो विचार करता

हूं, सत्य और ब्रह्मचर्य की महिमा की कल्पना से मन प्रफुल्लित हो जाता है। ब्रह्मचर्य का और अन्य सभी नीतिमत्ता का समावेश सत्य के अन्दर हो जाता है। फिर भी ब्रह्मचर्य का महत्त्व इतना भारी है कि उसका आसन सत्य की बराबरी का समझना चाहिए, यह विचार मुझे आया करता है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि इन दोनों के द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा को दूर किया जा सकता है। वास्तविक बाधा तो हमारा अपना मनोविकार ही है। यदि बाह्य सम्बन्धों पर सुख का लेशमात्र भी आधार हम न रखें तो लोग क्या कहते हैं, यह न सोचकर हमें क्या करना चाहिए, यही हम सोचेंगे।

—मोहनदास के आशीर्वाद।

किल डोनन कैसल
२८-११ ६

चि० मणिलाल,

अब रात के ६॥ बजे हैं। केपटाउन तक अब पांच दिन की मंजिल बाकी है। मुझे सीधा (जहाज से) ही जेल जाना होगा, यह सम्भव है इसलिए यह पत्र लिख रहा हूं। हम आत्मा को किस प्रकार खोज सकें, और किस प्रकार देश-सेवा कर सकें, इसका पहले विचार करना होगा। इसके बाद फिनिक्स क्या है, यह समझाया जा सकेगा। आत्मा को खोजने के लिए सबसे पहले नीति को दृढ़ बनाना चाहिए। नीति का अर्थ है सत्य, ब्रह्मचर्य आदि गुणों का सम्पादन करना। ऐसा करने पर अपने-आप देश-सेवा हो जाएगी।

मानव-द्रोही रंगभेद-जातिभेद

रंगभेद और जातिभेद के शिकार तो गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में ही बन चुके थे। उन्हें अपनी पोशाक और भारतीयों के प्रति गोरों के द्वारा किए जानेवाले अपमान का अनुभव वहां जाते ही हुआ और कदम कदम पर वह भारत से कुली बनाकर लाए गए भारतीयों के प्रति की जानेवाली बेइज्जती राष्ट्रीय अपमान के रूप में महसूस करने लगे। जिन भारतीयों ने दक्षिण अफ्रीका में गोरों का चीनी का धंधा जमाया और जिन्हें शर्तबंदी कुली बनाकर गोरे ही वहां अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए ले आए थे वे ही जब उन्हें 'कुली' कहकर अपमानित करने लगे, तो यह बात समझदार के लिए कैसे सहन हो सकती थी? और तो और, अदालतों के घेरे में भी गांधीजी को अपनी पगड़ी उतारे जाने और 'कुली बैरिस्टर' का सम्बोधन सुनने को बाध्य होना पड़ा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है

"सब तें कठिन जाति अपमाना।"

सो गांधीजी ने उसके अनुसार अपना व्यक्तिगत अपमान तो सहन कर लिया, किन्तु सारे भारतीयों के प्रति भेदभाव के और अपमानजनक व्यवहार को वे न सह सके। गोरों द्वारा हमले होने और चोट पहुंचने और रेल के डब्बे से निकाले जाने पर भी उन्होंने उस व्यक्तिगत अपमान को सहन कर लिया, किन्तु सभी भारतीयों के अपमानस्वरूप ३ पौण्ड का कर लगाए जाने, उनके गोरों आबादी में न रह सकने और प्रदेश की सीमा में न घुस सकने के कानून, जोकि कानून के उपहासमात्र थे, गांधीजी न सह सके

और उनका तोड़ना उन्होंने हर भारतीय का धर्म घोषित कर दिया। गांधीजी ने 'सत्याग्रह' शब्द की रचना भी वहीं की और वहीं उसे सर्वप्रथम अमल में लाया गया। गांधीजी से यह नहीं सहन हुआ कि मानव जाति का, चाहे वह भारतीय हो या और कोई, केवल अपने रंग और जाति के लिए ऐसा घोर अपमान सहन करना पड़े जो मानवता के सर्वथा विपरीत था। न केवल मानवता के, बल्कि ईश्वरीय विधान के विरुद्ध भी यह एक घोरतम अनाचार था। इसी आधार पर उन्होंने सत्याग्रह की दुन्दुभी बजाई जिसे अंत में आश्चर्यजनक सफलता मिली।

दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही गांधीजी ने अपना भावी जीवन-क्रम निर्धारित कर लिया था और तदनुसार नेटाल इंडियन कांग्रेस के द्वारा न केवल उपनिवेशवादी गोरों का पर्दाफाश किया, बल्कि भारतीयों पर लगे कर, प्रतिबंध, काले कानून और गोरों की मनमानी को आगे चलकर कठिन बना दिया।

किंतु दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह को सफलता के स्तर तक पहुंचाने के पहले गांधीजी को क्या-क्या कष्ट झेलने पड़े और उनके साथ भारतीयों को कानून का सहारा लेने से लेकर शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड तक ले जाने में क्या क्या कानूनी चाराजोई करनी पड़ी और अंत में एशियायी लोगों के विरुद्ध रजिस्ट्रेशन और अंगूठा निशानी का कानून जारी करके भारतीयों को उनके जाल में फंसाने की स्थिति तक पहुंचना पड़ा, उसमें स्थिति गम्भीरतर होती गई और सामूहिक सत्याग्रह के द्वारा दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार की मनमानी कारवाई रोकने का आन्दोलन शुरू कर दिया गया। यह सत्याग्रह की पहली लड़ाई थी। जिन एशि-

गांधी नेताओं को मजिस्ट्रेट द्वारा नोटिस दिया गया वे अपने-आप अदालत में हाजिर हो गए। उन्हें आर्डर दिया गया था कि यदि वे भारतीयों के रजिस्ट्रेशन में बाधा डालते हैं तो उन्हें एक अवधि के अन्दर ट्रान्सवाल छोड जाना पडेगा। यह काला कानून सभी एशियावासियों के विरुद्ध था इसलिए चीनी भी उसमें आते थे जिनके नेता थे श्री क्विन्ना। जोहान्सबर्ग में कुल ३०० से ४०० तक चीनी भी रहते थे, पर भारतीयों की तादाद बहुत बडी थी। गांधीजी ने इस काले कानून के शिकार सभी लोगों का संगठन बना दिया। मजिस्ट्रेट ने सभी एशियायी नेताओं को, जिनमें भारतीय ही अधिक थे, दो दिन से पन्द्रह दिन के अन्दर ट्रान्सवाल छोड जाने का हुक्म सुना दिया।

मजिस्ट्रेट का हुक्मनामा सुनकर भी कोई ट्रान्सवाल छोड़कर नहीं गया। इसलिए सबको सजा सुनने के लिए फिर बुलाया गया।

किसीने कोई सफाई नहीं दी। यह उसी मजिस्ट्रेट की अदालत थी जिसके सामने गांधीजी वकालत किया करते थे। उन्हें भी दो महीने की सादी कैद की सजा सुना दी गई।

जेल में सत्याग्रहियों का गए अभी एक पखवाडा ही हुआ था कि गोरी सरकार ने सत्याग्रहियों के साथ समझौते की बात-चीत शुरू कर दी। भारतीयों ने इसके लिए गांधीजी का नाम लिया जो जेल में थे। उनके पास जनरल स्मट्स ने 'ट्रान्सवाल लीडर' के सम्पादक अलबर्ट कार्टराइट को भेजा जिन्होंने गांधीजी से खुलकर बातचीत की। उन्होंने सुलह की शर्तें पेश करके आन्दोलन बन्द कराने को कहा। ये शर्तें जनरल स्मट्स ने ही

तयार की थी—गाधीजी ने उन शर्तों की अस्पष्ट भाषा पर आपत्ति की, पर एक सशोधन के साथ यह कहकर हस्ताक्षर कर दिया कि जेल के बाहर के साथियो से सलाह लिए बिना यह अन्तिम नही होगी। समझौते का साराश यही था कि भारतीय स्वेच्छा से रजिस्ट्रेशन स्वीकार कर लें—कानून के अन्तगत नही। यह भी कहा गया कि भारतीय यदि स्वेच्छा से रजिस्ट्रेशन स्वीकार कर लेंगे तो सरकार काला कानून रद्द कर देगी। दूसरे या तीसरे दिन गाधीजी को जेल से जनरल स्मटस के पास पहुचाया गया। जनरल स्मट्स ने गाधीजी को उनकी और उनके देशवासियो की दृढता के लिए बधाई दी। गाधीजी की तरह जनरल स्मट्स भी एक बैरिस्टर थे। बातचीत के बाद उन्होंने गाधीजी को स्वतन्त्र कर वहीं से घर चले जाने को कहा और उनके साथी कैदियो को भी, टेलीफोन द्वारा जेल को सूचित कर, छोड देने को कह दिया।

टॉलसटाय फार्म

गाधीजी ने न केवल स्वदेशवासियो के लिए, बल्कि समूचे मानव-समाज के लिए अपने विश्वास के अनुसार और मानवमात्र के दुखो पर तरस खाते हुए काम किया। उन्होने देखा कि मनुष्य अपने गलत व्यवहार के कारण ही जीवन मे दुखी होता और कष्ट भोगता है, इसलिए उन्होने एक ओर जहा अन्याय के प्रति अहिंसात्मक प्रतिरोध का उपाय मानव समाज के सामने रखा, वहा जीवन की रचनात्मक विधिया भी प्रस्तुत की। दक्षिण अफ्रीका का टॉलसटाय फार्म उनमे से एक था।

दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह की लडाई च्यूंटी और हाथी की लडाई थी। भारतीयो के पास न धन बल था, न उतना जागरण, पर उनमे सचाई और दृढता थी जिसके बल पर वे आगे बढ सकते थे। किन्तु सत्याग्रहियो के जेल जाने पर उनके परिवार के पालन का प्रश्न सामने आता था और इसके लिए आश्रम जस किसी स्थान की वाछनीयता अनुभव की जा रही थी। सत्याग्रही को उसकी लडाई के लिए मुक्त और निश्चिन्त बनानेवाली ऐसी व्यवस्था की बडी जरूरत थी।

ऐसे स्थान की खोज थी जहा शहरी जीवन की पिचपिच और सकीर्णता न हो। दूसरे, शहर के जीवन मे आश्रम-जीवन की सादगी आ भी नही सकती थी। तीसरे, जरा विस्तृत स्थान होने पर आश्रम म छोटे मोटे हस्तोद्योग भी चल सकते थे। ऐसी दशा मे आश्रम का स्थान न तो शहर म होना चाहिए और न शहर से बहुत दूर। फिनिक्स मे जहा 'इडियन ओपीनियन' की छपाई होती थी, कुछ खेती उगाने का काम भी होता था, किन्तु वह स्थान जोहान्सबर्ग से ३०० मील दूर होने के कारण अनुकूल नही था। ऐसा स्थान तो ट्रान्सवाल म, जोहान्सबर्ग से बहुत दूर नही होना चाहिए था। ऐसा एक स्थान श्री कलेनबक न ११०० एकड का खरीदा था और उन्होने उसे बिना किसी किराय क सत्याग्रहियो के उपयोग क लिए दे दिया था। इस स्थान म लगभग एक हजार फलो के वृक्ष भी थे। यहा एक छोटा सा मकान भी बनवाया जिसम छ व्यक्ति रह सकते थे। यहा से एक मील पर ही लाली रेलवे स्टेशन था।

गाधीजी ने यही जगह टाल्सटाय फार्म के नाम पर स्थापित

की और इनमें बसनेवाले भारतीय सत्याग्रही गुजराती, तमिल-भाषी, तेलुगुभाषी और उत्तर भारत के हिन्दू मुसलमान पारसी, ईसाई सभी थे। उन्होंने अपने उद्योग-बल और विचार-बल से इस आश्रम को भारत का एक छोटा-सा नमूना ही बना डाला जिसमें राष्ट्र की सभी भावनाएं और स्फूर्तियां भी थीं और धीरे-धीरे इस आश्रम में ऐसे गृहोद्योग स्थापित हो गए जिनसे सत्या-ग्रहियों के परिवारों का काम अच्छी तरह चलने लगा और सारे आश्रम के अमीर-गरीब एक परिवार की तरह काम करने लगे। बच्चों की पढ़ाई लिखाई की व्यवस्था भी हो गई और एक प्रकार से यह आश्रम अपना काम आर्थिक दृष्टि से खुद चलाने लगा।

जिन दिनों स्व० गोपालकृष्ण गोखले दक्षिण अफ्रीका पहुंचे तो गांधीजी टॉलस्टाय फार्म में ही रहते थे और गोखले को वह आश्रम और उसकी संचालन विधि देखकर प्रसन्नता हुई थी।

प्रथम सत्याग्रह की फलश्रुति

दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह, सत्य और अहिंसा की एक प्रयोग-शाला बन गया था जिसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि ट्रांस-वाल की सीमा में फिर प्रवेश करते ही गांधीजी की गिरफ्तारी निश्चित थी, क्योंकि कानून के रूप में परिवर्तन नहीं हुआ था। पहले जो समझौता हुआ था वह अस्थायी था और उसके बाद दक्षिण अफ्रीका की यूनियन सरकार का रुख और सख्त हो गया।

एक परिवार के रूप म बसाने और रखने का प्रयत्न किया गया।

इस आश्रम म श्री अमृतलाल ठक्कर की कृपा से शीघ्र ही एक हरिजन परिवार भी आकर रहने को तैयार हो गया। गाधीजी न ठक्कर बापा को लिख दिया कि आश्रम के अनुसार चलन का तैयार होन पर ही वह हरिजन परिवार यहा रह सकता है। यह हरिजन परिवार था बम्बई के एक अध्यापक—दूदाभाई, उनकी पत्नी दानी बहन और उनकी छोटी लडकी लक्ष्मी।

करुणा की पगडडिया

गाधीजी ने जब भारत मे रहन का विचार पक्का कर लिया तो पहले-पहल गाधीजी के अपने १८९४ ई० में आरम्भ किए गए आदोलन—दक्षिण अफ्रीका के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत शर्तबदी कुली-प्रथा का अत घोषित हो गया जिससे कितनी ही निराशाओ के बीच एक नई आशा का सचार हुआ।

चम्पारन के निलहे गोरे

उस समय देश मे जो रयतवाडी प्रथा उत्तर बिहार के गरीब किसानो का तग कर रही थी वह थी चम्पारन ज़िले के किसानो पर निलहे गोरो का घोर अत्याचार। व अपने गोरे भू-स्वामियो के लिए नील बोने को बाध्य थे। उन्हे अपनी जोत की ज़मीन म १५ प्रतिशत क्षेत्र मे नील की बुआई अपने गोरे मालिको के लिए करनी पडती थी। हजारो किसानो की इस दुदशा और

मजदूरी का पता देश के पढे-लिखे वग को बिलकुल न था। राजकुमार शुक्ल पहले किसान थे जिन्हे नील की कोठी चलानेवाले गोरा का यह अत्याचार सहन नही हुआ और उन्होंने वहा के किसानो के कष्ट-सहन की कहानी गाधीजी को सुनाई।

शुक्लजी ने गाधीजी को १९१६ की लखनऊ काग्रेस मे देखा तो उन्हें लगा कि जैसे किसाना का कोई उद्धारक उन्हे मिल गया। शुक्लजी गाधाजी को लखनऊ काग्रेस की छोलदारी मे मिले और बोले—"हम लोगा के वकील बाबू आपको हम किसाना की सब दुदशा समझा देंगे।"

यह 'वकील बाबू' और कोई नहीं, ब्रजकिशोर प्रसाद थे जिन्होंने बाद म चम्पारन मे गाधीजी के साथ काम किया और जो उन दिना बिहार के सावजनिक जीवन की आत्मा थे। श्री राजकुमार शुक्ल उन 'वकील बाबू' को गाधीजी के तम्बू मे ले गए। उन दिना के वकीली फशन के अनुसार आलपाका की काली अचकन और चूडीदार पाजामे की पोशाक मे थे। गाधीजी पर पहले तो उनका देखकर कोई खास प्रभाव नही पडा। उन्होने समझा कितन ही वकीलो की तरह वे भी किसाना को चूसनेवाला मे से एक होगे, किन्तु जब ब्रजकिशोर प्रसाद ने उन्हे चम्पारन की कहानी सुनाई तो गाधीजी ने यही कहा कि "मैं किसानो की स्थिति प्रत्यक्ष देखे बिना कोई भी राय नही दे सकता। आप ही काग्रेस मे उनके बारे मे प्रस्ताव रखें। राजकुमार शुक्ल काग्रेस न कुछ मदद चाहते थे। बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद ने चम्पारन के किसाना के प्रति सहानुभूति का प्रस्ताव रखा जो सर्वानुमति से पारित हो गया।

एक परिवार के रूप मे बसाने और रखने का प्रयत्न किया गया।

इस आश्रम मे श्री अमृतलाल ठक्कर की कृपा से शीघ्र ही एक हरिजन-परिवार भी आकर रहने को तैयार हो गया। गाधीजी ने ठक्कर बापा को लिख दिया कि आश्रम के अनुसार चलने को तैयार होने पर ही वह हरिजन परिवार वहा रह सकता है। यह हरिजन-परिवार था बम्बई के एक अध्यापक—दूदाभाई, उनकी पत्नी दानी बहन और उनकी छोटी लडकी लक्ष्मी।

करुणा की पगडडिया

गाधीजी ने जब भारत म रहने का विचार पक्का कर लिया तो पहले पहल गाधीजी क अपने १८९४ ई० मे आरम्भ किए गए आन्दोलन—दक्षिण अफ्रीका के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत शर्तबन्दी कुली प्रथा का अन्त घोषित हो गया जिससे कितनी ही निराशाओ के बीच एक नई आशा का सचार हुआ।

चम्पारन के निलहे गोरे

उस समय देश मे जो रैयतवाडी प्रथा उत्तर बिहार के गरीब किसानो को तग कर रही थी वह थी चम्पारन जिले के किसानो पर निलहे गोरो का घोर अत्याचार। व अपने गोरे भू-स्वामियो के लिए नील बोने को बाध्य थे। उन्हे अपनी जोत की जमीन म १५ प्रतिशत क्षेत्र मे नील की बुवाई अपने गोरे मालिको के लिए करनी पडती थी। हजारो किसानो की इस दुर्दशा और

उनकी हालत दिखाना चाहते थे और वे भी उसके लिए उत्सुक थे।

गाधीजी यह विचार करके उसी दिन मोतिहारी के लिए रवाना हो गए। बाबू गोरखप्रसाद ने गाधीजी और साथियो का अपने मकान म ठहराया जो एक सराय-सा बन गया। उन सबके लिए उसम मुश्किल स जगह थी। गाधीजी न उसी दिन सुना कि मोतिहारी से पाच मील पर एक असामी के साथ, निलहे गोरे द्वारा बुरा व्यवहार किया गया है। यह निश्चय हुआ कि दूसरे दिन तडके ही गाधीजी बाबू धरणीधर के साथ उसे देखने जाए। इसके अनुसार गाधीजी अपने साथी सहित हाथी पर सवार होकर रवाना हो गए। व कोई आधे रास्ते ही गए होगे कि पुलिस कप्तान का एक स देशवाहक उ ह आ मिला और बोला कि कप्तान साहब न सलाम बोला है। गाधीजी इसका मतलब समझ गए और धरणीधर बाबू को गन्तव्य स्थान को जाने के लिए छोडकर व सन्देशवाहक द्वारा लाई गई भाडे की गाडी मे बैठ गए। इसके बाद स देशवाहक न गाधीजी को चम्पारन छोड जाने का नोटिस दिया और उन्हें उनके ठहरने के स्थान तक पहुचा दिया। उसने नोटिस मिलने की रसीद भी गाधीजी से मागी तो उन्होंने लिख दिया कि वे अपनी जाच पूरी होने तक जाना नही चाहते। इसके बाद गाधीजी को अदालत का समन मिला, क्योकि उन्होंने चम्पारन छोड जाने का आदेश भग किया था।

उस रात गाधीजी डा० राजेन्द्रप्रसाद को आवश्यक बातें और सूचनाए देते हुए जागते ही रहे।

नोटिस और समन की बात चारो ओर फल गई और गाधी-

सुनने की तयारी मे लग गए और साथ ही उन्होने उस डिवीजन के कमिश्नर से मिलना भी जरूरी समझा जिसमे वे निलहे गोरो के पक्ष की बात भी अच्छी तरह समझ लें। उन्होने कमिश्नर से मुलाकात करने के लिए समय मागा और वह मिल गया।

निलहे गोरो का एक एसोसिएशन (सघ) था जिसके सेक्रेटरी ने गाधीजी को स्पष्ट शब्दो मे कहा कि वे तो एक बाहरी आदमी हैं इसलिए निलहो और उनके असामियो के बीच मे पडना उनका काम नही है, फिर भी अगर उन्हे कोई प्रतिनिधित्व करना है तो वे उसे लिखित रूप मे पेश कर सकते हैं। गाधीजी ने उससे विनम्रतापूर्वक कहा—"मैं तो अपने को बाहरी आदमी नहीं समझता और मुझे असामियो की, अगर वे चाहे, हालत जानने के लिए जाच करने का पूरा अधिकार है।"

कमिश्नर से मिलने पर उसने गाधीजी को धमकाने की कोशिश की और तिरहुत डिवीजन छोड जाने की सलाह दी।

गाधीजी ने अपने सहयोगी कार्यकर्ताओ को इन बातो से परिचित कराया कि शायद सरकार मुझे आगे बढने से रोके और मुझे समय से पहले ही जेल चला जाना पडे। ऐसी हालत मे उनके गिरफ्तार हो जाने पर अच्छा यह हो कि वे मोतिहारी मे गिरफ्तार हो और अगर सम्भव हो तो बेतिया मे। इसलिए यह जरूरी हो गया कि गाधीजी उन दोनो स्थानो को जाए।

चम्पारन तिरहुत कमिश्नरी का एक जिला है और मोतिहारी उसका सदरमुकाम है। राजकुमार शुक्ल का स्थान बेतिया के पास था और आसपास की नील की कोठिया के असामी इसी जिले मे सबसे गरीबी की हालत मे थे। राजकुमार शुक्ल गाधीजी को

उनकी हालत दिखाना चाहते थे और वे भी उसके लिए उत्सुक थे।

गांधीजी यह विचार करके उसी दिन मोतिहारी के लिए रवाना हो गए। बाबू गोरखप्रसाद ने गांधीजी और साथियो को अपने मकान मे ठहराया जो एक सराय-सा बन गया। उन सबके लिए उसमे मुश्किल से जगह थी। गांधीजी ने उसी दिन सुना कि मोतिहारी से पाच मील पर एक असामी के साथ, निलहे गोरे द्वारा बुरा व्यवहार किया गया है। यह निश्चय हुआ कि दूसरे दिन तड़के ही गांधीजी बाबू धरणीधर के साथ उसे देखने जाए। इसके अनुसार गांधीजी अपने साथी सहित हाथी पर सवार होकर रवाना हो गए। वे कोई आधे रास्ते ही गए होंगे कि पुलिस कप्तान का एक सन्देशवाहक उन्हें आ मिला और बोला कि कप्तान साहब ने सलाम बोला है। गांधीजी इसका मतलब समझ गए और धरणीधर बाबू को गन्तव्य स्थान को जाने के लिए छोड़कर वे सन्देशवाहक द्वारा लाई गई भाड़े की गाड़ी मे बैठ गए। इसके बाद सन्देशवाहक ने गांधीजी को चम्पारन छोड़ जाने का नोटिस दिया और उन्हे उनके ठहरने के स्थान तक पहुचा दिया। उसने नोटिस मिलने की रसीद भी गांधीजी से मागी तो उन्होंने लिख दिया कि वे अपनी जाच पूरी होने तक जाना नही चाहेंगे। इसके बाद गांधीजी को अदालत का समन मिला, क्योकि उन्होने चम्पारन छोड़ जाने का आदेश भग किया था।

उस रात गांधीजी बा० राजेन्द्रप्रसाद को आवश्यक बातें और सूचनाए देते हुए जागते ही रहे।

नोटिस और समन की बात चारो ओर फैल गई और गांधी-

जो स कहा गया कि उस दिन मोतिहारी मे अभूतपूर्व भीड हुई। बाबू गोरखप्रसाद के घर से लेकर अदालत तक कही तिल धरने की जगह नही रही। गाधीजी ने तो सारा काम रात को ही करके अपनी अगल दिन की तैयारी कर ली थी। भीड मे उनके साथी गाधीजी के साथ भी जमे रहे और उनकी पूरी मदद की। भीड गाधीजी के पीछे-पीछे लग गई और उनके साथी उस नियत्रण मे रखने लग गए।

अधिकारिया—कलेक्टर, मजिस्ट्रेट, पुलिस कप्तान और गाधीजी के बीच मित्रता की भावना फैल गई। गाधीजी चाहते तो दिए गए नोटिस का कानूनी बचाव कर सकते थे, पर उन्होने उसे स्वीकार किया और उनका व्यवहार अधिकारियो को ठीक जचा। इस प्रकार अधिकारियो ने देख लिया कि गाधीजी व्यक्तिगत रूप मे उनको नाराज नही करना चाहत, उनके आदेश की सविनय अवज्ञा करना चाहत है। इसस व ढीले पड गए और उन्हें परेशान करने के बदले वे उनके और उनके साथियो द्वारा भीड नियत्रित करने मे मदद दन लगे। किन्तु इस दृष्टि से अधिकारिया के लिए यह दशनीय प्रदशन था कि उनका अधिकार हिल रहा है। उस समय भीड के लागो म से उस भय की भावना ही दूर हा गई थी और व गाधीजी क प्रम मे बध गए थे। तारीफ की बात तो यह थी कि चम्पारन म गाधीजी को जानता कोई नहीं था। नील वाले किसान बत ही अनजान थे। चम्पारन बस भी गगा के उत्तर और हिमालय की तराई म होने के कारण नपाल का पडोसी है, इसलिए शेष भारत से अलग थलग सा है। उन भागो मे काग्रेस का जनता ने नाम नही सुना था। जिन्होने

नाम भी सुना था वे कांग्रेस में शामिल होने में हिचकते थे और उसके नाम से डर जाते थे। अब उसी कांग्रेस ने इस क्षेत्र में प्रवेश कर लिया—और वह भी नाममात्र के लिए नहीं, सच्चे अर्थों में।

अपने साथियों की राय में गांधीजी कांग्रेस के नाम से कुछ नहीं कर रहे थे—असल में काम की जरूरत थी, नाम की नहीं। इसलिए कांग्रेस की ओर से वहां किसीको नहीं भेजा गया। उन किसानों के पास राजेन्द्र शुक्ल जैसे एकाध आदमी को कहा-कहा तक भेजा जाता, फिर भी सबमें गांधीजी के प्रति ऐसी भावना जगी जैसे कोई उनका युग-युग का मित्र अचानक आ पहुंचा हो। गांधीजी को किसानों के उस सम्मिलन ने जैसे भगवान, अहिंसा और सत्य के दर्शन करा दिए।

इसका कारण और कुछ नहीं, उन किसानों के प्रति गांधीजी की गहरी करुणा की भावना थी और था उनका अहिंसा में अडिग विश्वास।

चम्पारन उस दिन गांधीजी के जीवन में अविस्मरणीय घटनास्थल बन गया और वहां के किसानों के लिए वह दिन जैसे स्वर्ण दिवस के रूप में आ गया।

कानून के अनुसार गांधीजी पर मुकदमा चला, पर सच्चा मुकदमा तो सरकार के विरुद्ध था। कमिश्नर तो गांधीजी को जाल में फांसकर अदालत के सामने रखने में सफल हुआ, पर गांधीजी इस बात में सफल हुए कि युग-युग का पीड़ित किसान, जिसकी दर्दभरी पुकार बाहर नहीं जा सकती थी और जिन प्रताड़ित करनेवाले अपने इस कुकर्म को रहस्य बनाकर रखने

मे सफल हो रहे थे, एक प्रबल भण्डाफोड के रूप मे जनता के—ससार के सामने प्रकट करने को वाध्य हो गए।

गाधीजी ने अपने को कसूरवार कबूल करते हुए अदालत के सामने उस दिन जो वक्तव्य दिया वह इतिहास मे सदा पठनीय और मननीय बना रहेगा।

वक्तव्य इस प्रकार था

"अदालत की आज्ञा से मैं एक सक्षिप्त वक्तव्य यह दिखाने के लिए देना चाहूगा कि मैंने प्रकटतया भारतीय दण्डाज्ञा की १४४वी धारा का आदेश भग प्रकट करनेवाला ऐसा गम्भीर कदम क्यो उठाया। मेरी विनम्र राय मे यह स्थानीय शासन और मेरे बीच मतभेद की बात है। मैंने इस क्षेत्र मे इस उद्देश्य से प्रवेश किया ह कि मैं मानवता और राष्ट्रीयता की सेवा करू। मैंने ऐसा इसलिए किया कि रैयतो की ओर से एक आवश्यक आमत्रण इस आशय का गया था कि उनके साथ निलहे लोग समुचित व्यवहार नही कर रहे हैं। मैं समस्या का अध्ययन किए बिना कोई मदद नही कर सकता था। इसलिए मैं, यदि सम्भव हो तो, शासन और निलहो की मदद से इसके अध्ययन के लिए आया। मेरा कोई और उद्देश्य नही है और मैं यह विश्वास नही कर सकता कि मेरे आने से सार्वजनिक शान्ति भग होने या किसीकी जान जाने का खतरा है। ऐसे मामलो म मैं काफी अनुभव रखने का दावा रखता हू। किन्तु शासन न इससे भिन्न विचार किया है। मैं उसकी कठिनाइया को समझता हू और मैं यह भी स्वीकार करता हू कि वह प्राप्त सूचना के अनुसार ही कार्यवाही कर सकता है। कानून को मान्य करनेवाले नागरिक के

रूप मे मेरी पहली सहजवृत्ति दिए गए आदेश का पालन करने की होती, पर मैं ऐसा करता तो मैं, जिनके लिए आया हू, उनके प्रति हिंसा करता। मैं महसूस करता हू कि मैं उनके बीच रहकर ही उनकी सेवा कर सकता था। इसीलिए मैं स्वेच्छापूर्वक अवकाश ग्रहण कर चला नही गया। कर्तव्यों के इस सघर्ष मे मैं अपने को उनसे अलग हटाए जाने की जिम्मेदारी शासन पर ही डाल सका। मैं इस तथ्य से पूर्णत अवगत हू कि भारत मे सार्वजनिक जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति को, ऐसी स्थिति मे जिसमे मैं हू, कोई मिसाल पेश करने मे बडी सावधानी दिखानी चाहिए। मेरा दृढ विश्वास है कि जैसे पेचीदा सविधान के अन्तर्गत हम रह रहे हैं, आत्मगौरववाले व्यक्ति के लिए, ऐसी परिस्थितियो में जैसी मेरे सामने हैं एकमात्र सुरक्षित और प्रतिष्ठाजनक मार्ग वही है जिसका अवलम्बन मैं करना चाहता हू—अर्थात् बिना विरोध आदेशभग के दण्ड के सम्मुख आत्मसमर्पण।

' मैं यह वक्तव्य सजा से किसी प्रकार त्राण या मार्जन प्राप्त करने के लिए नही, बल्कि यह दिखाने के लिए दे रहा हू कि मैंने अपने ऊपर लगाई गई अधिकारियो की आदेशाज्ञा का भग उनके प्रति असम्मान प्रकट करने के लिए नही, बल्कि उस उच्चतर अस्तित्व के विधान के—आत्मा की आवाज के अनुसार किया है।"

मजिस्ट्रेट और सरकारी वकील इस वक्तव्य से हिल उठे और उन्होंने आश्चर्य-स्तब्ध हो फैसला स्थगित कर दिया। इस बीच गांधीजी ने वाइसराय, पटना के मित्रों और प० मदनमोहन मालवीय आदि को तार दे दिए।

किन्तु इसके पहले कि अदालत गाधीजी को सजा सुनाए, लेफ्टिनेंट गवनर के आदेशानुसार मजिस्ट्रेट ने गाधीजी को सूचित किया कि सरकार ने उनके विरुद्ध मुकदमा वापस ले लिया है। कलक्टर ने गाधीजी का निलहो सम्बन्धी आवश्यक कागजात दिखाने की सन्नद्धता प्रकट की और गाधीजी के लिए सरकारी अधिकारियो से मिलने और शिकायत-सम्बन्धी मामलो से सम्बन्धित अभिलेख देखने की छूट मिल गई।

इस प्रकार भारत ने सविनय-अवज्ञा का यह प्रथम बोध पाठ सीखा।

खेडा-सत्याग्रह

उन दिनो गुजरात के खेडा जिले मे फसल न होने के कारण भयकर अकाल पडा और वहा के पाटीदारो ने दुर्भिक्ष की दशा देखकर उस साल लगान न देने का निश्चय किया।

जसी स्थिति थी उसकी श्री अमृतलाल ठक्कर पहले ही वहा के कमिश्नर से उसके बारे मे बातचीत कर चुके थे, श्री मोहनलाल पण्ड्या और शकरलाल पारिख इस सघष मे उतर पडे थे और श्री विट्ठलभाई पटेल और सर गोकलदास कहानदास पारेख की मदद से बम्बई व्यवस्थापिका परिषद् मे आन्दोलन उठा चुके थे। इस सिलसिले मे गवनर से मिलने एक से अधिक शिष्टमण्डल भी जा चुके थे।

उन दिनो गाधीजी गुजरात सभा के अध्यक्ष थे। सभा ने भी सरकार के पास इस सिलसिले मे प्राथनापत्र और तार भेजे और कमिश्नर द्वारा की गई बेइज्जती और धमकी भी सह ली। इस

अवसर पर अधिकारियो का यह व्यवहार ऐसा उपहासास्पद और अशोभनीय था जिसपर अब विश्वास भी नही किया जा सकता।

किसानो की माग तो बिलकुल सीधी सादी थी और वह इतनी नरम थी कि उसे आसानी से स्वीकार बनाया जा सकता था। भूराजस्व कानून के अनुसार अगर फसल की पैदावार चौथाई या इससे भी कम हो तो किसान पूरे साल के लगान की माफी का दावा कर सकता है। सरकारी आकडो के अनुसार पैदावार चौथाई से अधिक कही गई—दूसरी ओर किसानो का यह कहना था कि वह चौथाई से कम थी। सरकार किसानो की यह बात सुनने को तैयार नही थी और इसके बारे मे मध्यस्थता को अपनी शान के खिलाफ समझती थी। आखिर सभी निवेदन-आवेदन असफल हो गए। गाधीजी ने अपने साथियो की सलाह से पाटीदारो को सत्याग्रह करने की सलाह दी।

खेडा के स्वयसेवको के सिवा इस आन्दोलन मे गाधीजी के मुख्य साथी सर्वश्री वल्लभभाई पटेल, शकरलाल बकर, श्रीमती अनुसूया बहन, इन्दुलाल याज्ञिक और महादेव देसाई आदि थे। श्री वल्लभभाई पटेल को इस आन्दोलन मे सम्मिलित होने के लिए अपनी अच्छी और शानदार तथा बढ़ित वकालत छोड देनी पडी जो बाद मे वे फिर उसे जारी ही न कर सके।

इस आन्दोलन का प्रधान कार्यालय नडियाद अनाथाश्रम मे रखा गया क्योकि सारे आन्दोलन-सचालन के लिए वसी बडी जगह अन्यत्र नहीं मिली।

सत्याग्रहियों को निम्नलिखित प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े

"यह जानते हुए कि हमारे गावों की पैदावार रुपये में चार आने से कम है, हमने सरकार से अनुरोध किया कि इस आनेवाले वर्ष तक लगान माफ कर दिया जाए, किन्तु सरकार ने हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। इसलिए हम निम्नलिखित व्यक्ति इस प्रतिज्ञापत्र द्वारा यह घोषित करते हैं कि हम अपनी इच्छा से सरकार का इस वर्ष का पूरा या बाकी लगान नहीं अदा करेंगे। सरकार जो भी कानूनी कार्यवाही करना ठीक समझे वह हम करने देंगे और उस लगान न देने के परिणाम का खुशी खुशी भोग लेंगे। हम अपनी जमीन जब्त हो जाने देंगे, पर स्वेच्छा से लगान देकर अपने मामले को झूठा समझा जाना नहीं स्वीकार करेंगे, न अपने आत्मगौरव को खोएंगे। किन्तु यदि सरकार पूरे जिले में लगान की दूसरी किस्त वसूल करना बंद कर देगी तो हममें से जो अदा करने योग्य हैं वे पूरा या बाकी लगान चुका देंगे। जो लोग देने के लायक हैं उन्होंने अब तक अदायगी इसलिए रोक रखी है कि अगर वे अदा कर देंगे तो अपेक्षाकृत गरीब रैयत डरकर अपनी चल सम्पत्ति बेच देगी और कर्ज लेकर लगान भर देगी और इस तरह अपने आपको कष्ट में डाल लेगी। ऐसी परिस्थिति में हम महसूस करते हैं कि गरीबों के लिए ऐसा का भी कर्तव्य है कि जो अदा कर सकते हैं कि वे भी लगान रोक रखें।"

खेड़ा सत्याग्रह चम्पारन की तरह सुदूर कोने में स्थित स्थान का आन्दोलन नहीं था। उसमें सारे गुजरात और गुजरातियों

की दिलचस्पी थी और समाचारपत्रों ने उसकी घटनाएं विस्तार से प्रकाशित कीं। जो सम्पन्न थे उन्होंने इसके लिए धन दिया। बम्बई के व्यापारियों ने आर्थिक दृष्टि से इस आन्दोलन को काफी आगे बढ़ाया।

खेड़ा सत्याग्रह में सम्मिलित होनेवाले अमीर-गरीब सभी को अपना जीवन सादा बनाना पड़ा। उन्होंने अपने जीवन का ढंग बदल दिया। पाटीदार किसानों के लिए भी यह लड़ाई नई थी। ऐसी दशा में सत्याग्रहियों को गांव-गांव जाकर किसानों को सत्याग्रह के सिद्धान्त समझाने पड़ते थे।

मूल बात यह थी कि किसानों को इस आन्दोलन ने निर्भय बना दिया। वे समझ गए कि सरकारी अधिकारी मालिक नहीं, प्रजा के सेवक हैं क्योंकि आखिर लगान या कर अदा करनेवालों के धन से ही तो उनको तनखाह दी जाती है। फिर भी उन्हें इस बात को अच्छी तरह समझाया गया कि सरकारी अधिकारियों से अपना विरोधी मनोभाव प्रकट करते हुए वे विनम्रता को हाथ से न जाने दें।

आरम्भ में लोगों ने बड़ा साहस दिखाया, फिर भी सरकार ने सख्त कार्यवाही नहीं की, पर जब सरकार ने देखा कि किसान बराबर सख्त और दृढ़ बने हुए हैं तो उसने कुर्क-अमीन उनके जानवर और अन्य चल सम्पत्ति, जो भी हाथ में आई, बेचने लगे। जुर्माने के नोटिस दिए गए और कुछ खड़ी फसलें भी कुर्क कर ली गईं। इससे किसान घबराए और उनमें से कुछ ने डरकर बकाया चुका दिया और कुछ ने अधिकारियों को कुर्क करने की सुविधा दे दी, किन्तु कुछ तो अन्त तक लड़ने के लिए कमर कस चुके थे।

आदोलन का अत सहसा हो जाने से ऐसा लगा कि लोग थककर ऊब गए हैं, फिर भी गाधीजी को इससे खुशी ही हुई, क्योकि वे सत्याग्रह आदोलन को जिस सुदरता से चलाना चाहते थे वैसा नही चल रहा था।

फिर भी खेडा के इस सत्याग्रह आदोलन से एक बडा लाभ यह हुआ कि शिक्षित वर्ग और नगरवासियो का सम्पर्क गाव के किसानो से हो गया। लोगो मे त्याग की भावना आई। बहुत बडी बात यह हुई कि सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय आदोलन मे सदा के लिए आ गए। बारडोली तालुका का नाम सारे भारत मे विख्यात हो गया। पाटीदार किसानो मे अभूतपूर्व चेतना जाग्रत् हुई। लोगो ने इस सत्याग्रह से यह पाठ सीखा कि उनकी मुक्ति अपने ही हाथ मे—अपने ही कष्ट-सहन और त्याग मे निहित है।

नोआखाली और बिहार

गाधीजी ने अभी तक तो यही सुना था कि नोआखाली (पूर्व बगाल) मे मुसलमान कलकत्ता के दगे का बदला लेने के लिए हिंदुओ को लूट मारकर उनकी सम्पत्ति स्वाहा कर रहे हैं, पर जब उन्हे यह सवाद मिला कि अब वहा हिंदू स्त्रियो की बेइज्जती भी की जा रही है और जो धर्मान्तर स्वीकार नही कर रहे हैं, उन्हे सीधे मौत के घाट उतारा जा रहा है, तब उनसे नही रहा गया। उन्होने शरत बोस के अलावा सतीशचन्द्र दासगुप्त, उनकी पत्नी हेमप्रभा देवी और श्री सतीनसेन को नोआखाली इस शर्त पर जाने को कहा कि यदि वे उनके कहने से नही, बल्कि अपनी

इच्छा से मौत के मुंह में जाने को तैयार हो तो जाए।

किन्तु इन सबको जाने के लिए कहकर भी गांधीजी चुप नहीं बैठे और जब उन्हें उपर्युक्त ढंग के सन्देश मिले तो उन्होंने नोआखाली को जाने की तैयारी कर ली। उन्होंने प्रार्थना सभा में कहा—"मरना ही हो तो वीरतापूर्वक मरना चाहिए।" भूपाल और विश्वरंजन नामक दो और कार्यकर्ताओं ने उनके इस आदेश का पालन बड़ी निर्भीकता के साथ किया पर गांधीजी उनमें नहीं थे जो दूसरों को तो मरने को आगे भेज दें और खुद पीछे रहें।

जब उन्होंने नोआखाली जाने की तैयारी कर ली और 'करो या मरो' का मन्त्र अपने कार्यकर्ताओं को दे दिया तो अमरीकी पत्रकार प्रेस्टन ग्रावर ने उनसे मिलकर पूछा—"क्या मुसलमान आपकी बात सुनेंगे?"

गांधीजी ने तुरन्त जवाब दिया—'मैं इस आशा से नहीं जा रहा हूं कि वे मेरी बात मान ही लेंगे किन्तु ऐसी आशा करना मेरा कर्तव्य है। कर्तव्य पालन में भगवान भी सहायक होता है।'

"परन्तु भारत में इस तरह के दंगे कब शान्त होंगे?" उसने फिर पूछा।

"जब यहां से अंग्रेजों का प्रभाव दूर हो जाएगा, क्योंकि अभी तक तो दोनों पक्ष सहायता के लिए अंग्रेजों की ओर देख रहे हैं।"

०

गांधीजी एक द्रष्टा और अमली आदमी की हैसियत से अपने

कर्तव्य का निश्चय कर हिंसा क्षेत्र नोआखाली जाने को अपनी छोटी सी टुकड़ी के साथ तैयार हो गए।

गांधीजी एक छोटी-सी टुकड़ी साथ ले मसीहा की भांति निकल पड़े और सर से कफन बांधकर ऐसे लोगों के बीच घुस पड़े जो करुणा का नाम नहीं जानते। किन्तु निर्भय, निर्द्वन्द्व गांधी सत्य और प्रेम के शक्तिशाली अस्त्र के बल पर आगे बढ़ते जा रहे थे। उन गुमराहों की राह में आने पर उन्हें अपने साथियों के प्राणों से हाथ धोना पड़ सकता है, इस बात का विचार उन्होंने क्षण भर के लिए भी नहीं किया। मानव जाति की एकता, समानता और भेदभावहीनता के लिए उन्होंने सर्वस्व की बाजी लगा दी।

किन्तु गांधीजी सलाहकारों और पार्श्ववर्तियों की बहकानेवाली बातें नहीं सुनते थे। एक बार निश्चय हो जाए कि यह काम करना है, फिर उन्हें कोई शक्ति नहीं रोक सकती थी। उन्होंने तो पहले ही घोषणा कर दी थी कि 'हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए मेरी अहिंसा की कठोरतम परीक्षा होगी।" फिर उन्होंने यात्रा के दरम्यान अपनी सकरुण परिणति को इन शब्दों में व्यक्त किया—"जिस काय में मैं यहां लगा हुआ हूं, सम्भव है वही मेरा अंतिम काय हो। यहां से यदि मैं जीवित और अक्षत लौटा तो मेरा पुनर्जन्म होगा। मेरी अहिंसा की परीक्षा जैसी यहां हो रही है वैसी कभी नहीं हुई थी।"

इस प्रकार गांधीजी उस काम में जुट गए थे जिसको हाथ में लेने की शक्ति देश में न किसी संस्था में रह गई थी, न व्यक्ति में। वे गांव गांव, घर घर जाकर साम्प्रदायिक विद्वेष शान्त कर रहे थे

और मुस्लिम लीग से प्रभावित साम्प्रदायिक विद्वेषाग्नि को बुझाने का निश्चय कर चुके थे। उनकी इस यात्रा के विचार से, धर्मांध मुसलमान अपनी करतूतों पर पानी पानी हो रहे थे।

उधर तो गांधीजी नोआखाली में मानवता के घोरतम जुल्मों का मुकाबला करने पहुंचे थे और इधर बिहार से मुस्लिम लीगी मुसलमानों ने उन्हें पत्र लिखने शुरू किए कि बिहार में मुसलमानों पर हिन्दुओं द्वारा ढाए गए जुल्म बड़े ही अमानुषिक, बर्बर और असहनीय हैं, इसलिए आप (गांधीजी) मानवता की सेवा करना चाहते हैं तो शीघ्र ही बिहार पहुंचें। जिला मुस्लिम लीग मुंगेर (बिहार) के मंत्री ने तो गांधीजी को लिखा—'बिहार में मुसलमानों पर हिंदुओं ने जो अत्याचार किए हैं उनका मुकाबला इतिहास का कोई जुल्म नहीं कर सकता।" साथ ही अलीगढ़ के एक मुसलमान वकील ने तो यहां तक लिख डाला—"आपके (हिंदू) समुदाय के लोगों द्वारा, आपका भय त्यागकर 'मारो या मरो' के उपदेश से ही कलकत्ता जैसा भयंकर हत्याकाण्ड हुआ है और उसके बाद बिहार में हो रहा है। अगर आप हिन्दू-मुस्लिम एकता के सचमुच हामी हैं तो आपको वहां (बिहार) जाना चाहिए जहां आपके समुदायवाले हमला कर रहे हैं।"

इस प्रकार नोआखाली का शान्ति मिशन मुसलमान नेताओं, मुस्लिम लीगियों और अन्यों की आंखों में कांटे की तरह चुभने लगा। मुस्लिम लीग खार खाए बैठी थी। शहीद सुहरावर्दी से लेकर फजलुल हक तक सभी अपने-अपने स्वार्थ साधन में लग गए। फजलुल हक तो खुल्लम-खुल्ला कहने लगा—"गवर्नमेण्ट मेरे हाथ में होती तो मैं सुहरावर्दी की तरह गांधीजी के

कर्तव्य का निश्चय कर हिंसा क्षेत्र नोआखाली जाने को अपनी छोटी-सी टुकड़ी के साथ तैयार हो गए।

गांधीजी एक छोटी-सी टुकड़ी साथ ले मसीहा की भांति निकल पड़े और सर से कफन बांधकर ऐसे लोगों के बीच घुस पड़े जो करुणा का नाम नहीं जानते। किन्तु निर्भय, निर्द्वन्द्व गांधी सत्य और प्रेम के शक्तिशाली अस्त्र के बल पर आगे बढ़ते जा रहे थे। उन गुमराहों की राह में आने पर उन्हें अपने साथियों के प्राणों से हाथ धोना पड़ सकता है, इस बात का विचार उन्होंने क्षण भर के लिए भी नहीं किया। मानव जाति की एकता, समानता और भेदभावहीनता के लिए उन्होंने सर्वस्व की बाजी लगा दी।

किन्तु गांधीजी सलाहकारों और पार्श्ववर्तियों की बहकाने वाली बातें नहीं सुनते थे। एक बार निश्चय हो जाए कि यह काम करना है, फिर उन्हें कोई शक्ति नहीं रोक सकती थी। उन्होंने तो पहले ही घोषणा कर दी थी कि "हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए मेरी अहिंसा की कठोरतम परीक्षा होगी।" फिर उन्होंने यात्रा के दरम्यान अपनी संकल्प परिणति को इन शब्दों में व्यक्त किया—"जिस कार्य में मैं यहां लगा हुआ हूं, सम्भव है वही मेरा अन्तिम कार्य हो। यहां से यदि मैं जीवित और अक्षत लौटा तो मेरा पुनर्जन्म होगा। मेरी अहिंसा की परीक्षा जैसी यहां हो रही है वैसी कभी नहीं हुई थी।"

इस प्रकार गांधीजी उस काम में जुट गए थे जिसको हाथ में लेने की शक्ति देश में न किसी संस्था में रह गई थी, न व्यक्ति में। वे गांव गांव, घर घर जाकर साम्प्रदायिक विद्वेष शान्त कर रहे थे

और मुस्लिम लीग से प्रभावित साम्प्रदायिक विद्वेषाग्नि को बुझाने का निश्चय कर चुके थे। उनकी इस यात्रा के विचार से, धर्मांध मुसलमान अपनी करतूतों पर पानी-पानी हो रहे थे।

उधर तो गांधीजी नोआखाली में मानवता के घोरतम जुल्मों का मुकाबला करने पहुंचे थे और इधर बिहार से मुस्लिम लीगी मुसलमानों ने उन्हें पत्र लिखने शुरू किए कि बिहार में मुसलमानों पर हिन्दुओं द्वारा ढाए गए जुल्म बड़े ही अमानुषिक, बर्बर और असहनीय हैं, इसलिए आप (गांधीजी) मानवता की सेवा करना चाहते हैं तो शीघ्र ही बिहार पहुंचें। जिला मुस्लिम लीग मुंगेर (बिहार) के मन्त्री ने तो गांधीजी को लिखा—'बिहार में मुसलमानों पर हिन्दुओं ने जो अत्याचार किए हैं उनका मुकाबला इतिहास का कोई जुल्म नहीं कर सकता।" साथ ही अलीगढ़ के एक मुसलमान वकील ने तो यहां तक लिख डाला—"आपके (हिन्दू) समुदाय के लोगों द्वारा, आपका भय त्यागकर 'मारो या मरो' के उपदेश से ही कलकत्ता जैसा भयंकर हत्याकाण्ड हुआ है और उसके बाद बिहार में हो रहा है। अगर आप हिन्दू-मुस्लिम एकता के सचमुच हामी हैं तो आपको वहां (बिहार) जाना चाहिए जहां आपके समुदायवाले हमला कर रहे हैं।"

इस प्रकार नोआखाली का शान्ति मिशन मुसलमान नेताओं, मुस्लिम लीगियों और अन्यों की आंखों में कांटे की तरह चुभने लगा। मुस्लिम लीग खार खाए बैठी थी। शहीद सुहरावर्दी से लेकर फजलुल हक तक मन्त्री अपने-अपने स्वार्थ साधन में लग गए। फजलुल हक तो खुल्लम-खुल्ला कहने लगे—"गवर्नमेण्ट मेरे हाथ में होती तो मैं सुहरावर्दी की तरह गांधीजी को

नोआखाली मे उपदेश करने की छूट न देता।" उधर मुसलमानो मे तो वे (फज़लुल हक) अपनी इस्लाम हितैषिता की बातें कर रहे थे और इधर तार देकर गाधीजी से मिलने के लिए भी पहुच गए। बातो-बातो मे उन्होंने (फज़लुल हक ने) अपने आपका पर्दा फाश कर दिया।

आखिर गाधीजी बिहार पहुच गए और वहा डा० सयद महमूद, प्रो० अब्दुलबारी से मिलकर डा० महमूद के घर ठहरे। कांग्रेस प्रेसीडेंट राजेन्द्रबाबू उन्हें डा० महमूद के घर पर ही मिलने गए। उन्होंने गाधीजी को बताया कि बिहार मे लोगो को अपने किए पर पछतावा नही है, क्योंकि उनका ख्याल है कि बिहार ने बगाल को बचा लिया है।

और अन्त मे दिल्ली

बिहार मे गाधीजी का काम पूरा भी नही हुआ था कि दिल्ली म उपद्रव शुरू हो गया और हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए—साम्प्रदायिक वमनस्य इतना ऊपर उछला कि जिसम जीवन-रक्षक चिकित्सको तक की हत्या होने लगी। दशा इतनी खराब हुई कि सरदार वल्लभभाई पटेल ने गाज़ियाबाद जाकर गाधीजी को वही ट्रेन से उतार लिया और दिल्ली जक्शन रेलवे स्टेशन पर नही आने दिया।

दिल्ली पहुचकर गाधीजी ने सदा के अनुसार अपनी प्रार्थना-सभा मे प्रवचन देना शुरू किया और वे उसम रोज हिन्दू मुस्लिम एकता पर ज़ोर देते हुए उपदेश करने लगे। यहा तक कि जिस दिन (३० जनवरी, १९४८ को) उनकी हत्या हुई उसके एक दिन

पहले (२६ जनवरी, १६४८ को) उन्होंने प्रार्थना-सभा में जो भाषण किया उसमे उन्होने स्पष्ट कहा

"भाइयो और बहनो,

मेरे सामने कहने को चीज तो काफी पडी है, उनमे से जो आज के लिए चुननी है चुन ली है। पन्द्रह मिनट मे जितना कह सकूगा, कहूगा।

एक बात तो देख रहा हू कि थोडी देर हो गई है—यह होनी नही चाहिए थी। सुशीला बहन बहावलपुर चली गई हैं। बहावलपुर मे आदमी दुखी हैं। उनको देखने के लिए चली गई हैं—दूसरा अधिकार तो कोई है नही, और न हो सकता था। फ्रेण्ड्स सर्विस के लोनली ग्रास के साथ चली गई हैं। फ्रेण्ड्स यूनिट मे किसीको भेजने का इरादा मैंने किया था, ताकि वह वहा लोगो को देखे, मिले और मुझको वहा के हाल बता दे। इस वक्त सुशीला बहन के जाने की बात नही थी, लेकिन जब सुशीला बहन ने सुन लिया तो उसने मुझसे कहा कि इजाजत दे दो तो मैं ग्रास साहब के साथ चली जाऊ। जब वह नोआखाली मे काम करती थी तब से यह उनको जानती थी। वह आखिर कुशल डाक्टर है और पजाब मे गुजरात की है। उसने भी काफी गवाया है, क्योकि उसकी तो वहा काफी जायदाद है। फिर भी दिल मे जहर पैदा नही हुआ है। तो उसने बताया कि मैं वहा जाना चाहती हू, क्योकि मैं पजाबी बोली जानती हू, हिन्दुस्तानी जानती हू, उर्दू और अंग्रेजी भी जानती हू, तो मैं वहा ग्रास साहब को मदद दे सकूगी। तो मैं यह सुनकर खुश हो गया। बडा खतरा तो है, लेकिन उसने कहा कि मुझको क्या खतरा है, ऐसा डरती तो नोआखाली क्यो

जाती ? पंजाब मे बहुत लोग मर गए हैं, बिल्कुल मटियामेट हो गए हैं, लेकिन मेरा तो ऐसा नहीं है, खाना पीना सब मिल जाता है, ईश्वर सब करता है। अगर आप भेज दें और खास साहब मेरे को ले जाए तो मैं वहा के लोगो को देख लूगी। तो मैंने खास साहब से पूछा कि क्या आपके साथ सुशीला बहन को भेजू ? तो वे खुश हो गए और कहा कि यह तो बडी अच्छी बात है। मैं उनकी मार्फत दूसरो से अच्छी तरह बातचीत कर सकूगा। मिश्र वग मे हिन्दुस्तानी जाननेवाला कोई रहता वह बडी भारी चीज हो जाती है। इससे बेहतर क्या हो सकता है? वे रेडक्रास के हैं। रेडक्रास के माने यह हैं कि लडाई मे जो मरीज (घायल) हो जाते हैं उनको दवा देने का काम करना। अब तो दूसरा-तीसरा भी काम करते हैं। तो डा० सुशीला खास साहब के साथ गई है या डा० सुशीला के साथ खास साहब गए हैं, यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नहीं, क्योकि दोनो एक-दूसरे के दोस्त हैं, मोहब्बत करते हैं। वे सेवा भाव से गए हैं, पैसा कमाना तो है नही। वे जो देखेंगे मुझे बताएगे और सुशीला बहन भी बताएगी। मैं नही चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि यह तो डाक्टर है और खास साहब दूसरे हैं। कौन ऊचा है कौन नीचा है, ऐसा कोई भेद-भाव न करें, लेकिन खास साहब, उनके साथ औरत है तो औरत को आगे कर देते हैं और अपने को पीछे रखते हैं। आखिर वे उनके दोस्त हैं। मैं एक बात और कह देना चाहता हू कि नवाब साहब तो मुझको लिखते रहते हैं। मुझको कई लोग झूठ बात भी लिखते हैं तो उसे मानने का मेरा क्या अधिकार है। मैंने सोचा कि मुझको क्या करना चाहिए। तो बहावलपुर मे जो लोग आए

हैं उनको बता दू कि वे वहा से आएगे तो मुझको सब बात बता देंगे।

अभी वन्नू के भाई लोग मेरे पास आ गए थे—शायद चालीस आदमी थे। वे परेशान तो हैं, लेकिन ऐसे नहीं है कि चल नहीं सकते थे। मैंने उनसे कहा कि वे जो कुछ कहना है, व्रजकिशन-जी से कह दें। वे सब भले आदमी हैं। उन्हे गुस्से से भरे होना चाहिए था, लेकिन फिर भी वे मेरी बात मान गए। उनमे एक भाई ने गुस्से म कहा—'आप बडे हैं, महात्मा हैं, तो क्या, हमारा काम तो बिगाडते ही हो। तुम हमको छोड दो—भूल जाओ ! जाओ !' जब मैंने पूछा कहा जाओ तो कहा—'हिमालय जाओ।'

मैंने कहा—'मैं हिमालय की शान्ति नही चाहता—मैं तो अशान्ति मे से शान्ति चाहता हू, नही तो उस अशान्ति मे मर जाना चाहता हू। मेरा हिमालय यही है। हा, आप सब हिमालय चले तो मुझको भी साथ लेते चलें।' "

इसके बाद गाधीजी ने अपने प्रवचन को जारी रखते हुए कहा—"आज एक सज्जन आए थे। उनका नाम तो मैं भूल गया। उन्होने किसानो की बात की। मैंने कहा—'मेरी चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा, बडा वजीर किसान होगा।"

प्रसग बदलते हुए उन्होने फिर कहा—"मद्रास मे खूराक की तगी है। मद्रास-सरकार की तरफ से दूत श्री जयरामदास दौलतराम के पास आए थे कि उस सूबे के लिए अन्न देने का बन्दोबस्त करें। मुझे मद्रासवालो के इस रुख से दुख होता है। मैं मद्रास के लोगो को समझाना चाहता हू कि वे अपने ही सूबे मे मूगफली, नारियल और दूसरे खाद्य पदार्थों के रूप मे काफी खूराक पा सकते हैं। मद्रासियो को मैं अच्छी तरह से जानता हू

दक्षिण अफ्रीका मे उस प्रात के सभी भाषावाले हिस्सो के लोग मेरे साथ थे। सत्याग्रह कूच के समय उन्हें रोजाना के राशन मे सिर्फ डेढ पौण्ड रोटी और एक औस शक्कर दी जाती थी। मगर जहा कही उन्होने रात को डेरा डाला, वहा जगल की घास मे से खाने लायक चीजें चुनकर मजे से गाते हुए उन्होंने पकाकर मुझे अचरज मे डाल दिया। ऐसी सूझ-बूझवाले लोग कभी लाचारी कैसे महसूस कर सकते है? यह सच है कि हम सब मजदूर थे। और ईमानदारी से काम करने मे ही हमारी मुक्ति और हमारी सभी आवश्यक जरूरतो की पूर्ति भरी है।"

गाधीजी का यह अन्तिम भाषण था। इसके दूसरे दिन की तारीख (३० जनवरी, १९४८) गाधीजी के जीवन की अन्तिम तिथि थी। उस दिन शाम को ५ बजकर १० मिनट पर जब प्रार्थना-स्थल पर आने लगे तो एक व्यक्ति ने उन्हें सामने से ही पिस्तौल की तीन गोलिया सीने पर चला दी और गाधीजी वहीं धराशायी हो गए। गिरने के समय उन्होने नमस्कार करने के लिए दोनो हाथ जोडे और उनके मुह से केवल 'हे राम!' की आवाज निकली।

इस प्रकार न केवल भारत बल्कि सारे विश्व मे सत्य, अहिंसा और शान्ति का अभिनव सन्देश देने तथा राजनीति मे भी सत्य, अहिंसा और शान्ति के प्रयोगो को काम मे लाने का अन्तिम प्रयोग करनेवाले गाधीजी इस लोक से चल बसे।

०